ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्
गायत्री पंचमुखी
और
एकमुखी

भगवती गायत्री के अनेक मुख

गायत्री माता की कागज पर छपी एवं प्रतिमा रूप से बनी आकृतियों में कई प्रकार की भिन्नताएँ पाई जाती हैं और उनके कारण सामान्य साधक के मन में असमंजस उत्पन्न होता है कि गायत्री माता एक है या अनेक । यदि एक हैं तो उनकी विभिन्न आकृतियों की प्रतिमाएँ क्यों हैं ?

एक मुखी, हंसारूढ़ा, पुस्तक कमण्डल धारिणी ब्रह्म गायत्री की छवि प्रतिमायें गायत्री तपोभूमि युग निर्माण योजना द्वारा प्रसारित होती हैं । यह गायत्री माता की आद्य शंकराचार्य प्रतिपादित तीन प्रतिमाओं में से सर्वप्रथम–सर्व प्रधान है । त्रिकाल संध्या में तीन आकृतियों में गायत्री ध्यानों का उल्लेख है । प्रातः ब्राह्मी, मध्यान्ह वैष्णवी, सायंकाल शाम्भवी । उनकी संगति ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र के साथ मिलाई गई है और उन्हीं से मिलती–जुलती नारी आकृति में गायत्री को चित्रित किया गया है । प्रातः हंसारूढ़, मध्यान्ह गरुड़ारूढ़ और सायं वृषभारूढ़ हैं । यही वाहन ब्रह्मा, विष्णु, महेश के हैं ।

स्तोत्र रत्नाकर आदि स्तुति ग्रन्थों में पंचमुखी, दसभुजी गायत्री का आकलन है । "मुक्ता विद्रूम हेम नील धवले–स्तवन में उनके आभूषणों और आयुधों का वर्णन है । यही छवि मुद्रण कला के माध्यम से पिछले दिनों प्रचलित होने लगी और उसी प्रकार की प्रतिमाएँ बनने लगीं, जबकि अधिक प्राचीन और प्रामाणिक प्रतिपादन के आधार पर ब्राह्मी, वैष्णवी और शाम्भवी इन तीन आकृतियों की गायत्री प्रतिमायें होना अधिक समीचीन होता ।

वस्तुतः गायत्री न तो कोई स्त्री शरीर धारी सत्ता है, न पुरुष रूप धारी, न तो उसके कोई हाथ–पाँव हैं, न मुख । वह विशुद्ध दिव्य चेतना है । भगवान की ऋतुम्भरा प्राण शक्ति है । उसके साक्षात्कार दिव्य विभूतियों, दिव्य सफलताओं के रूप में होते हैं ।

कोई भौतिक स्वरूप देना ही हो तो दिव्य प्रकाश की संज्ञा दी जा सकती है । प्राणों का तेज पुञ्ज या चैतन्य स्फुल्लिंग सत्ता कह सकते हैं किन्तु शास्त्रकारों ने देखा कि बिना किसी स्थूल माध्यम के श्रद्धा और प्रेम जैसे तत्व को विकसित करना और अन्तःकरण को उसके अभीष्ट लाभ प्रदान कराना संभव नहीं है इस कारण भगवती गायत्री की एकमुखी हंसारूढ़ प्रतिमा का प्रचलन हुआ । प्रतिमा के माध्यम से जन श्रद्धा को विकसित करने का उद्देश्य तो पूरा हुआ ही आकृति, आयुध, वाहन आदि के माध्यम से उन रहस्यों का भी समावेश कर दिया गया जिनके आधार पर साधक महामहिमामयी शक्ति का साक्षात्कार सरलता पूर्वक कर सके । कहीं–कहीं पर गायत्री को पंचमुखी चित्रित किया जाता है । यह उस ब्राह्मी शक्ति के दर्शन को सर्वसुलभ बनाने के लिए एक तरह की प्रतीक पहेली है । इस पहेली को सुलझाता हुआ साधक माँ के दर्शन करता है । पंचमुखी गायत्री में जीवात्मा के पाँच शक्ति स्रोतों का समावेश है, उन्हीं का इन पाँच मुखों में समावेश है । अन्नमय कोश, प्राणमय कोश, मनोमय कोश, विज्ञानमय कोश और आनन्दमय कोश इन पाँच कोशों में समाई हुई दिव्य शक्ति पंचमुखी है । पाँच तत्व, पाँच प्राण, पाँच तन्मात्रायें, पाँच तत्व इन्हीं सबको मिलाकर हमारा प्राण शरीर बना है । यही है पंचमुखी गायत्री का सांकेतिक एवं अलंकारिक तत्व दर्शन । पाँच मुखी गायत्री का ध्यान करना हो तो प्राण शरीर में संव्याप्त सत्ता के विराट् रूप की दार्शनिक झाँकी साथ–साथ ही पाँच प्रज्ञा चक्षुओं से करनी चाहिए और इस पराशक्ति के प्रकटीकरण के लिए अभीष्ट तपश्चर्या की साधना का संकल्प करना चाहिए ।

तैत्तिरीयोपनिषद् की तृतीय वल्ली (भृगु बल्ली) में एक बड़ी ही महत्वपूर्ण आख्यायिका आती है । उसमें पंचकोषों की साधना पर मार्मिक प्रकाश डाला गया है ।

वरुण के पुत्र भृगु ने अपने पिता के निकट जाकर प्रार्थना की

कि "अधीहि भगवो ब्रह्मेति" अर्थात् हे भगवान् ! मुझे ब्रह्मज्ञान की शिक्षा दीजिए ।

वरुण ने उत्तर दिया—यतो बा इमानि भूतानि जायन्ते, ये न जातानि जीवन्ति तत्प्रन्त्य भिसं विशति तद्विजिज्ञासस्व तद्ब्रह्मेति ।" अर्थात्—हे भृगु ! जिससे समस्त प्राणी उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होकर जीवित रहते हैं और अन्त में जिसमें विलीन हो जाते हैं, तू उस ब्रह्म को जानने की इच्छा कर ।

पिता के आदेशानुसार पुत्र ने उस ब्रह्म को जानने के लिए तप आरम्भ कर दिया । दीर्घकालीन तप के उपरान्त भृगु ने अन्नमय जगत (स्थूल संसार) में फैली ब्रह्म की विभूति को जान लिया और पिता के पास पहुँचा ।

वरुण ने भृगु से फिर कहा—"तपसो ब्रह्म विजिज्ञासस्व तपो ब्रह्मेति" अर्थात् हे पुत्र ! तू तप करके ब्रह्म को जानने का प्रयत्न कर, क्योंकि ब्रह्म तो तप द्वारा ही जाना जाता है ।

भृगु ने फिर तपस्या की और "प्राणमय जगत्" की ब्रह्म—विभूति का अभिज्ञान प्राप्त कर लिया । पिता ने उसे फिर तप में लगा दिया । अब उसने विज्ञानमय जगत् की ईश्वरीय विभूति को प्राप्त कर लिया । अन्त में पाँचवीं बार भी पिता ने उसे तप में ही प्रवृत्त किया और भृगु ने उस आनन्दमयी विभूति को भी उपलब्ध कर लिया ।

"आनन्दमय" जगत की अन्तिम सीढ़ी पर पहुँचने से किस प्रकार पूर्ण ब्रह्मज्ञान प्राप्त होता है इसका वर्णन करते हुए "तैत्तिरीयोपनिषद्' की तृतीय बल्ली के पाँचवे मन्त्र में बताया गया है कि—

"आनन्दो ब्रह्मेति विजानात्—आनन्दद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते, आनन्देन जातानि, जीवन्ति आनन्द श्रयत्यभि संधिशन्तीति । सैषां भार्गवी वारुणी विद्या परमेध्यों मन प्रतिष्ठता ।"

अर्थात् उस (भृगु) ने जाना कि आनन्द ही ब्रह्म है । आनन्द से ही सब प्राणी उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न होकर आनन्द से ही

जीवित रहते हैं और अन्त में आनन्द में ही विलीन हो जाते हैं ।

उपनिषदकार ने उपरोक्त आख्यायिका में ब्रह्मानन्द, परमानन्द, आत्मानन्द में ही ब्रह्मज्ञान का अन्तिम लक्ष्य बताया है । आनन्दमय जगत् के कोश में पहुँचने के लिए तप करने का संकेत किया है । कोशों की सीढ़ियाँ जैसे-जैसे पार होती हैं, वैसे ही वैसे ब्रह्म की उपलब्धि निकट आती जाती है । आगे बताया है कि-

"सय ऐतम् वित् अस्मालोकात्प्रेत्य ऐतनत्रमयमात्मा-नमुपसंक्रामति, एतम् प्राणभयसात्मानमुपसंक्रामति एतम् मनोमयमात्मानमुपसंक्रामित एतम् विज्ञान मयमात्मानमुप-संक्रामति, ऐतमानन्द मयमात्मानमुपसंक्रामति ।"

अर्थात्-इस प्रकार जो मनुष्य ब्रह्मज्ञान को प्राप्त कर लेता है वह इस मनोमय कोश को पार करता है, इस प्राणमय कोश को पार करता है, इस अन्नमय कोश को पार करता है, इस विज्ञानमय कोश को पार करता है, इस आनन्दमय कोश को पार कर सकता है ।

तैत्तिरीयोपनिषद् की एक वल्ली में आनन्द की मीमांसा करते हुए कहा गया है कि कोई मनुष्य यदि पूर्ण स्वस्थ, सुशिक्षित, गुणवान, सामर्थ्यवान एवं समस्त संसार की धन-सम्पत्ति का स्वामी हो तो उसे जो आनन्द हो सकता है, उसे मानुषी आनन्द कहते हैं । उससे करोड़ों-अरबों गुने आनन्द को ब्रह्मानन्द कहते हैं । ब्रह्मानन्द का ऐसा वर्णन शतपथ ब्राह्मण १५।७१।३१ में तथा वृहदारण्यक उपनिषद् ४।३।३३ में भी आया है ।

पञ्चमुखी गायत्री की साधना, पञ्चकोशों की साधना है । एक-एक कोश की एक-एक ब्रह्म विभूति है । ये ब्रह्म विभूतियाँ वे सीढ़ी हैं जो साधक को अपना सुखास्वादन कराती हुई अगली सीढ़ी पर चढ़ने के लिए अग्रसर करती हैं ।

यदि विचार किया जाय तो यह आश्चर्य और खेद का विषय है कि ऐसा साधन सुलभ होने पर भी मनुष्य केवल पेट भरने और निकृष्ट भोग करने की स्थिति में ही पड़ा रहे अथवा इससे भी नीचे

उतर कर छल, कपट, चोरी, हत्या आदि जैसे जघन्य कृत्य करके नरकवास करने के दण्ड का भागी बन जाय । ईश्वर ने हमको इस कार्यभूमि में मुख्यतः इसलिए भेजा है कि हम सत्कर्म और सात्विकी साधना तथा उपासना करके दैवी–मार्ग पर अग्रसर हों और जीवन को उच्चतर बनाते हुए अपने महान लक्ष्य को प्राप्त करें । दैवी मार्ग को अपनाने और जीवन को शुद्ध पवित्र परोपकारमय बनाने में ऐसी कोई बात नहीं है जो हमारी प्रगति में बाधा स्वरूप सिद्ध हो । गरीब से गरीब और सांसारिक साधनों से रहित व्यक्ति भी इसको अपना सकता है और गायत्री उपासना तथा सेवामय जीवन के द्वारा निरन्तर ऊपर की सीढ़ियों पर चढ़ता हुआ उच्चतम शिखर तक पहुँच सकता है । इसके लिए मुख्य आवश्यकता श्रद्धा, लगन व दृढ़ आत्म–विश्वास की ही है जिसको मनुष्य अभ्यास द्वारा प्राप्त कर सकता है ।

पैंगल्योपनिषद् में लिखा है–

अथान्नमयप्राणमयमनोमयविज्ञानमयानन्दमयाः पंचकोशाः । अन्नरसेनव भूत्वाऽन्नरसेनाभिवृद्धि प्राप्यान्नरसमयपृथिव्यां यद्विलीयते सोऽन्नमयकोशः । तदेव स्थूलशरीरम् । कर्मेन्द्रियैः सह प्राणादिपंचकं प्राणमयकोशः । ज्ञानेन्द्रियैः सह मनो मनोमयकोशः । ज्ञानेन्द्रियैः सह बुद्धिर्विज्ञानमयकोशः । एतत्कोशत्रयं लिंगशरीरम् । स्वरूपाज्ञानमानन्दमयकोशः । तत् कारणशरीरम् ।।३।।

अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनन्दमय यह पाँच कोश हैं । अन्न में बनने वाला, अन्न से बढ़ने वाला, अन्नमय धरती में समा जाने वाला यह अन्नमय कोश है । इसी को स्थूल शरीर कहते हैं । पाँच प्राण और पाँच कर्मेन्द्रियों से मिलकर प्राणमय कोश बना है । ज्ञानेन्द्रियाँ और मन के मिलने से मनोमय कोश बना है । ज्ञानेन्द्रियाँ और बुद्धि से विज्ञानमय कोश बना है । इन तीनों के मिलने से सूक्ष्म शरीर बना है । जिसके कारण ज्ञान होता है, वह आनन्दमय कोश है । इसी को शरीर कहते हैं ।

अस्थिस्नाय्म्बादिरूपोऽयं शरीरं भाति देहिनाम् ।
योऽयमन्नमयो ह्यात्मा भाति सर्वशरीरणः ।।२१।।
ततः प्राणमयो ह्यात्मा विभिन्नश्चान्तरस्थितः ।
ततो मनोमयो ह्यात्मा विभिन्नश्चान्तरस्थितः ।।२२।।
ततो विज्ञान आत्मा तु ततोऽन्तश्चान्तरस्थितः ।
आनन्दमय आत्मा तु ततोऽन्तश्चान्तरस्थितः ।।२३।।
योऽयमन्नमयः सोऽयं पूर्णः प्राणमयेन तु ।
मनोमयेन प्राणोऽपि तथा पूर्णः स्वभावतः ।।२४।।
ततो मनोमयो ह्यात्मा पूर्ण ज्ञानमयेन तु ।
आनन्देन सदा पूर्ण सदा ज्ञानमयेनः सुर्खी ।।२५।।
तथानन्दमयश्चापि ब्रह्मणान्येन साक्षिणा ।
सर्वान्तरेणा पूर्णश्च ब्रह्म नान्येन केनचित् ।।२६।।

—कठ रुद्रोपनिषद् २१ से २६

प्राणियों में यह स्थूल अन्नमय शरीर दिखाई दे रहे हैं । इससे पृथक प्राणमय शरीर हैं । इससे आगे मनोमय शरीर है । फिर विज्ञानमय और उसके भीतर से आनन्दमय शरीर हैं । प्राणमय से अन्नमय पूर्ण होता है । मनोमय से प्राणमय पूर्ण होता है । विज्ञानमय से मनोमय पूर्ण होता है और आनन्दमय शरीर मनोमय को पूर्ण करता है । इन पाँच शरीरों से ऊपर एक सर्वव्यापी, सर्वान्तर्यामी, परब्रह्म है । वह अपने आप पूर्ण है, उसे अन्य कोई पूर्ण नहीं करता ।

गायत्री के पाँच मुख इन पाँच कोशों के अलंकारिक चित्रण हैं और इस बात की ओर संकेत करते हैं कि जो इन पाँच कोशों का अनावरण कर लेता है वही अनन्त आनन्द की प्राप्ति करता है । अवतार श्रेणी के महापुरुषों को इसी महान् उपलब्धि ने अवतार बनाया । शिव सिद्ध के प्रतीक माने जाते हैं, उस पद की प्राप्ति के पीछे इन पंचकोशों की अनावरण साधना की ही भूमिका प्रमुख है । गायत्री मञ्जरी में इस सन्दर्भ में इन शब्दों पर प्रकाश डाला गया है—

गायत्री मंजरी में शिव—पार्वती का महत्त्वपूर्ण उपाख्यान आता है ।

पार्वती जी शिव जी से पूछती हैं कि आप किस योग की उपासना करते हैं, आपको किस तरह सिद्धि प्राप्त हुई है। शिवजी ने ४६ श्लोकों में इस पंचकोशीय साधना का सारा मर्म स्पष्ट कर दिया है। पाँच कोशों की स्थिति तत्वज्ञान और साधना विज्ञान के साथ उनकी सिद्धियों का बहुत ही क्रमबद्ध ज्ञान दिया है। गायत्री महाविज्ञान तृतीय खण्ड उसी के आधार पर लिखा गया है। इस पुस्तक के सभी बीज वस्तुतः गायत्री मंजरी में हैं। उससे इनकी असाधारण महत्ता का पता चलता है।

पंचकोशों की वैज्ञानिक पृष्ठभूमि

पाँच कोश मानवी चेतना के ही पाँच स्तर हैं। मनुष्य के सूक्ष्म शरीर के पाँच कलेवर हैं–(१) अन्नमय कोश (२) प्राणमय कोश (३) मनोमय कोश (४) विज्ञानमय कोश (५) आनन्दमय कोश। आत्मा–परमात्मा के मध्य अगणित आदान–प्रदान इन्हीं पाँच कोशों के द्वारा होते हैं। जो व्यक्ति जितने अधिक कोशों पर अधिकार कर लेता है, वह शक्तिहीनता तथा तुच्छता से उतना ही ऊपर उठता जाता है। पाँचों कोशों पर अधिकार कर लेने वाला व्यक्ति देव–पुरुषों की श्रेणी में जा विराजता है। इसका यह अर्थ नहीं कि वह जो चाहे, वह करने लगता है। यह सत्य है कि देव सत्ताओं की तरह वह भी उन कामों को सरलता से सम्पन्न कर सकता है, जिन्हें सामान्य व्यक्ति असंभव ही माने रहता है, पर वह स्वेच्छाचारी नहीं हो जाता। देव सत्तायें भी सार्वभौम नियम–व्यवस्था के ही अनुसार कार्य करती हैं। उस श्रेणी तक पहुँचे हुए महापुरुष की भी कोई वैयक्तिक इच्छा नहीं रह जाती। वह शाश्वत सत्ता की नियम–व्यवस्था से एकाकार हो जाता है। इसीलिए वह सामान्यतः असम्भव लगने वाले कार्य कर सकता तथा अदृश्य प्रतीत होने वाले दृश्य देख सकता है। यह चेतना–धरातल को उठाकर

समष्टि–चेतना से तादात्म्य स्थापित कर लेने की स्थिति है । इस सम्पूर्ण सृष्टि में तथा उससे परे भी, सर्वत्र चेतना प्रवाह विद्यमान है । इस चेतना की अनन्त परतें हैं । प्रत्येक चेतना स्तर अपने ढंग का अनूठा है । सामान्य मनुष्य जिस चेतना–धरातल का स्पन्दन ग्रहण कर पाने से अक्षम हो, वहाँ चेतना है ही नहीं, यह बात तार्किक दृष्टि से तो मान्य नहीं ही है, आधुनिक पदार्थ विज्ञानी भी अब इसी निष्कर्ष पर पहुँच चुके हैं कि चेतना के अनन्त समुद्र में हमारी पैठ अत्यन्त नगण्य है ।

चेतना का विशाल सागर इस ब्रह्माण्ड में विस्तृत है । उसी ने पदार्थ को उत्पन्न किया है । पदार्थ भौतिक विज्ञानी ने पदार्थों में ही सत्य को सन्निहित मान सत्यान्वेषण प्रारम्भ किया और अब वह प्रकृति के सूक्ष्म से सूक्ष्म स्तरों में प्रवेश करता हुआ विस्मित हो उठा है । पदार्थ की ही सत्ता संदिग्ध हो उठी है और अपना सम्पूर्ण बोध ही एक भ्रम या आभास मात्र प्रतीत होने लगा है अभी हम जो मानते हैं, वह हमारे बोध की परिधि में सिमटे सृष्टि–रूपों की झलक मात्र है अर्थात् उसे आभास ही कहा जा सकता है, सत्य नहीं । यह आभास हमारे लिए ज्ञात चेतना–धरातलों की परिधि में बद्ध है । यदि किसी प्रकार हमारी चेतना एक सर्वथा नये आयाम को छू ले, तो अभी का हमारा जो भी बोध है, वह तब पूरी तरह बदल ही जाएगा । जिसे आज सर्वथा सत्य मान रहे हैं, कल वही एक भ्रम लगने लगेगा ।

आइन्स्टीन ने चेतना के इसी आयाम को, "बोध" के नये धरातल को 'चतुर्थ आयाम' की संज्ञा दी थी । आज वैज्ञानिकों को चतुर्थ आयाम सम्बन्धी अनेक साक्ष्य प्राप्त हो रहे हैं ।

चतुर्थ आयाम की अवधारणा से अवगत होने के लिए उसे यों समझा जा सकता है–हमारा सम्पूर्ण बोध तीन आयामों तक सीमित है । जो कुछ भी हम देखते–जानते, समझते–सोचते हैं, वह त्रिआयामीय वस्तु जगत से सम्बन्धित होता है । ये तीन आयाम

हैं—पहला लम्बाई दूसरा चौड़ाई तथा तीसरा मोटाई, गहराई अथवा ऊँचाई । यह तो हो सकता है कि किसी वस्तु का कोई आयाम अधिक हो कोई कम । जैसे किसी सन्दूक की लम्बाई, चौड़ाई तथा ऊँचाई तीनों ही अधिक होती हैं, किन्तु कागज की मात्र लम्बाई-चौड़ाई ही अधिक होती है, केश या बाल की लम्बाई ही अधिक होती है, जबकि किसी धूलिकण के तीनों आयाम बहुत छोटे होते हैं । ये तीनों आयाम देश या 'स्पेस' में होते हैं । आइन्स्टाइन के अनुसार चौथा आयाम है 'टाइम' या काल ।

सामान्यतः तीन आयामों तक ही हमारा बोध—क्षेत्र है । चतुर्थ आयाम का बोध होते ही हमारे सामने ज्ञान का एक अनन्त क्षेत्र खुल सकता है । तब यह संसार एक सर्वथा भिन्न रूप में नजर आने लगेगा । ऐसा बहुत कुछ जिसे हम यथार्थ, वास्तविक और सत्य मानते-जानते हैं, वह यथार्थ और एक भ्रान्ति मात्र है, यह स्पष्ट हो जायेगा ।

इसे क्रमशः इस तरह समझा जा सकता है—एक बिन्दु को लें । यद्यपि प्रत्येक बिन्दु कुछ न कुछ स्थान घेरता ही है, गणित में बिन्दु वस्तुतः उसे ही कहते हैं, जिसका कोई स्थान तो हो, पर आचार न हो या कह सकते हैं कि रूप तो हो पर आकार न हो । अब कोई १० सेन्टीमीटर लम्बी रेखा को लें । इस रेखा में असंख्य बिन्दु समाहित हो सकते हैं, क्योंकि बिन्दुओं का तो कोई 'साइज' या आकार होता नहीं । यह १० सेन्टीमीटर लम्बी रेखा, 'स्पेस' की एक ही दिशा 'लम्बाई' का प्रतिनिधित्व करती है । यह एक आयाम, एक वर्ग जिसमें लम्बाई व चौड़ाई दोनों हैं, पर गहराई, मोटाई या ऊँचाई नहीं, उसमें लम्बाई और चौड़ाई के दो आयाम हुए, जैसे किसी कागज के पन्ने की ऊपरी सतह । जबकि किसी कमरे में, जिसमें लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई तीनों होती हैं, तीनों आयाम उपस्थित रहते हैं । किसी सतह पर नाली में रहने वाले दो ऐसे कीड़ों की कल्पना कीजिए जो सिर्फ एक ही आयाम लम्बाई जानते हो, चौड़ाई भी कोई वस्तु होती है यह जानते ही न हों । इसका

अर्थ है कि यदि वे संयोगवश आमने-सामने आ पड़ते हैं, तो वे एक-दूसरे से बच कर नहीं निकल सकते, क्योंकि अगल-बगल जैसी कोई चीज वे जानते ही न होंगे। वे तो बस उसी रेखा में, उसी सीध में या तो आगे जा सकते हैं या पीछे आ सकते हैं। वही उनका संसार है।

किसी पुस्तक का पृष्ठ यदि चेत हो उठे, पर उसका बोध-'क्षेत्र लम्बाई और चौड़ाई इन दो ही आयामों तक सीमित हो तो वह उसी पुस्तक के दूसरे पृष्ठों के अस्तित्व को कभी भी नहीं जान सकता।

अपने त्रिआयामीय बोध-'सामर्थ्य के कारण जब हम किसी छाया-चित्र को देखते हैं, तो उसमें गहराई की स्वयं ही कल्पना कर उसी चित्र को समझ लेते हैं। जबकि सामान्यतः यदि किसी कुत्ते को उसका या उसके स्वामी का छाया-चित्र दिखाया जाय, तो यह उसके लिए अर्थहीन होगा। उस पर इसकी कोई प्रतिक्रिया न होगी। लेकिन उस चित्र में गति आ जाने पर वही कुत्ता प्रतिक्रिया करेगा क्योंकि तब जैसे उसकी चेतन में कोई स्मृति कौंध जाती है। गति का नया घटक स्थिति को बदल देता है। चलचित्र आदि को देखकर इसलिए कुत्ता भौंकने लगता है।

दो आयामों वाले चित्रों को देखने की अभ्यस्त हमारी जागृत मनश्चेतना त्रिविमितीय स्तर के छाया-चित्रों को देखकर किस तरह विभ्रान्त हो उठती है, यह 'होलोग्राफी' के जानकार लोगों को विदित है। लेसर किरणों की कृपा से 'होलोग्राफी' के आधार पर त्रिविमितीय सिनेमाओं का निर्माण कई विकसित देशों में प्रारम्भ भी हो चुका है, जहाँ पर्दे पर मनुष्य, मोटर, घोड़े, रेलगाड़ी, भालू, शेर आदि यथार्थवत् चलते, दौड़ते दिखाई पड़ते हैं और अनभ्यस्त सिनेमा दर्शक प्रारम्भ में भ्रमित हो जाते हैं।

इस प्रकार तीसरे आयाम का ही नये सन्दर्भ में नवीन बोध जब हमें विस्मित-विमुग्ध कर सकता है, तब चतुर्थ आयाम की जानकारी तो पूरे बोध क्षेत्र को ही उलट-पुलट देगी और हमारी वर्तमान निर्विवाद धारणाएँ भी जड़-मूल से उखड़ जायेंगी।

आइन्स्टाइन ने जब सर्वप्रथम सापेक्षता–सिद्धान्त की व्याख्या की तो सम्पूर्ण विश्व में केवल बारह वैज्ञानिक उसे समझ पाये, ऐसा कहा जाता है । फिर जब प्रोफेसर स्मिथ ने सर्व–सामान्य को समझाने के लिए सापेक्षता सिद्धान्त पर एक पुस्तक लिखी, तो एक विनोद ही चल निकला कि आइन्स्टीन ने सर्वप्रथम व्याख्या की, तो उसे बारह वैज्ञानिक समझ पाये, किन्तु प्रोफेसर स्मिथ की व्याख्या तो एक भी व्यक्ति नहीं समझ पाया । अंग्रेजी में इस संदर्भ में एक हास्य कविता भी है, जिसका मनोरंजक भावानुवाद यों होगा–

एक थी लड़की–नाम जोन ब्राइट,
चलती अति तीव्र गति से जैसे हो 'लाइट'
एक दिन उमंग में, प्रकाश से भी प्रखरतर,
वेग से चली वह आइन्स्टाइनी ढंग से,
लौटकर आई तो थी पिछली "नाइट" ।"

किन्तु आज यह बात विनोद नहीं रह गई है । काल की गति पीछे की दिशा में लौट सकने की बात अब वैज्ञानिक जगत में सर्व स्वीकृत होती जा रही है । असीम वेग से चलने वाले कणों की जानकारी बढ़ती जा रही है । १९६७ में गेराल्ड़ फोनवर्ग ने काल्पनिक मात्रा के इन कणों को 'टेकियान' नाम दिया । टेकियान का 'प्रापर मास' काल्पनिक होता है एवं उनका वेग प्रकाश–वेग से भी ज्यादा होता है, प्रकाश वेग से कम तो नहीं ही हो सकता । यद्यपि अभी ऐसे उपकरणों का अभाव है, जिनके द्वारा टेकियान को प्रदर्शित किया जा सके, किन्तु वैज्ञानिकों द्वारा यह तथ्य मान्य हो चुका है कि 'टेकियान' विद्यमान है ।

१९६८ में टेक्सास विश्वविद्यालय, संयुक्त राज्य अमरीका में, अनुसंधान कार्य कर रहे डॉ. सुदर्शन ने फोनवर्ग की परिकल्पना को सही सिद्ध कर दिया । ये तो हुए प्रकाश वेग से अधिक तीव्रगामी टेकियान, जिन पर अनुसंधान जारी है । प्रकाश–वेग से गतिमान

कणों को 'लक्सान' कहते हैं, जिनका 'प्रॉपर मास' शून्य रहता है। फोटोन, न्यूट्रिनो, ग्रेवीटीन आदि ऐसे ही कण हैं।

प्रकाश की गति वाले अनेक कण तो अस्थाई-अस्थिर होते हैं, किन्तु फोटोन, न्यूट्रिनों व एन्ट्रीन्यूट्रिनों स्थाई होते हैं। इन कणों की खोज ने काल सम्बन्धी एक नई अवधारणा को वैज्ञानिकों के बीच प्रतिष्ठित कर दिया है और वे मानने लगे हैं कि समय मात्र आगे ही नहीं जाता, पीछे की तरफ भी लौट सकता है। फोटोन कणों का वेग प्रकाश वेग के बराबर होता है, अतः उनके लिए तो काल गति शून्य है। भूत, वर्तमान और भविष्य में कोई अन्तर नहीं है। प्रकाश वेग से अधिक गति से चलने वाले कणों के लिए समय की गति हमारी परिचित भावना के सर्वथा विपरीत हो जाती है। हम अतीत से वर्तमान और वर्तमान से भविष्य की काल यात्रा करते हैं, किन्तु उन कणों की यात्रा भविष्य से वर्तमान और वर्तमान से अतीत में होती है। यही है काल के चतुर्थ आयाम की आइन्स्टीन की धारणा।

जब अतीत में लौटना भी सम्भव हो जायगा, तो हमारा वर्तमान बोध किस प्रकार अस्त-व्यस्त हो जाएगा, यह हम भली-भाँति समझ सकते हैं। उदारहणार्थ हमारी वर्तमान धारणा है कि राम एवं कृष्ण, महात्मा गाँधी आदि मर गये। लेकिन तब हम स्पष्ट उन्हें उसी रूप में देख सकेंगे, जैसे कि वे उस समय थे। इससे जन्म-मृत्यु की भौतिकवादी धारणा पूरी तरह ध्वस्त हो जाएगी और भारतीयों की जो मान्यता अभी जन-सामान्य के लिए मात्र एक विश्वास के रूप में ही है, वह बिल्कुल प्रत्यक्षतः सत्य दिखाई देगी। तब यह स्पष्ट हो जायेगा कि जन्म या मृत्यु चरम अर्थों में एक भ्रान्ति मात्र है। यह हुआ काल के चतुर्थ आयाम की जानकारी का एक प्रभाव-परिणाम। हमारे सम्पूर्णबोध क्षेत्र में ऐसी ही उथल-पुथल मच जायेगी, जिसे नष्ट होना मान बैठते हैं वह रूप, परिवर्तन मात्र प्रतीत होगा जिसे आज अपना बेटा, अपनी पत्नी मानते हैं, यह अतीत का अपना भाई, मित्र या शत्रु भी हैं। यह स्पष्ट दिख जाने पर रिश्तों

के प्रति वर्तमान दुराग्रही मोह टूट जायेगा, क्योंकि वह एक मूर्खतापूर्ण भ्रान्ति मात्र है, यह स्पष्ट हो जायेगा ।

यह सब अत्यन्त निकट है । रूसी वैज्ञानिक एलेक्जेण्डर बोलेगोव का कहना है कि यह सुनिश्चित सम्भावना है । उनके अनुसार 'आर्कियोविठियोफोन' नामक एक संयन्त्र निर्मित किया जा सकता है, जो टेलीविजन सैट जैसा यह संयन्त्र जिस व्यक्ति के पास होगा वह व्यक्ति अपने परिवार सम्बन्धी मित्रों या सम्बन्धियों के छाया-चित्रों आदि के आधार पर अपने दादाओं, परदादाओं की आकृतियाँ इस संयन्त्र के पर्दे पर देख सकेगा और उनसे वार्तालाप भी कर सकेगा । यह हुई काल के चतुर्थ आयाम के बोध की एक करामात ।

पाँचवें आयाम में मस्तिष्क और चेतना के अकल्पित क्रिया, व्यापार सम्भव होंगे । उस आयाम की खोज से आत्माओं की अवधारणा भी विज्ञान के सामने स्पष्ट हो सकती है तथा अनन्त लोकों की नवीन जानकारियों का द्वार खुल सकता है । अभी हमें विश्व की जानकारी जितनी है, उसमें यान्त्रिक माध्यमों में उच्चतर आयाम के अन्वेषण की विधि ज्ञात नहीं है । किन्तु मानव जाति ऐसी मनःनियंत्रण की शक्ति अर्जित, विकसित कर सकती है जिससे कि उक्त नवीन आयाम का बोध प्राप्त हो सके भले ही यान्त्रिक उपकरण वैसे सुलभ या सम्भव न हो सकें ।

भारतीय मनीषियों ने मन की ऐसी साधना कर चेतना के विविध आयामों का बोध प्राप्त किया था । पंचकोश इन्हीं पाँच चेतना आयामों के ही नाम हैं । शरीरस्थ इन पाँच आणविक विद्युत भण्डारों को अन्तरिक्ष में असंख्य शक्तिधाराओं के साथ सम्बन्ध जोड़ने वाले शक्तिशाली इलेक्ट्रॉनिक संयन्त्र के रूप में प्रयुक्त कर ज्ञान और शक्ति का अनन्त विस्तार किया जा सकता है । मनुष्य में समस्त देव शक्तियों का अंश विद्यमान है, अतः वह अपने भीतर निहित इनमें से किसी भी शक्ति का अथवा सभी शक्तियों के समन्वित स्वरूप का विकास कर सकता है । पदार्थवाद अभी तक इस

मार्ग में बाधा बनने का प्रयास कर रहा था । अब वही इस मार्ग का नया व्याख्याकार बनने जा रहा है ।

आइन्स्टीन चतुर्थ आयाम से भी आगे एक पंचम आयाम की सम्भावना देखते हैं । चतुर्थ आयाम के अस्तित्व को अतीन्द्रिय ज्ञान की असंख्य घटनायें प्रमाणित करती रहती हैं । प्रेत शरीर के बारे में स्वप्नों को सही संकेतों के रूप में–दूरदर्शन, दूर–श्रवण, विचार संचार आदि के रूप में हम अदृश्य जगत की सत्ता को प्रत्यक्षवत् देखते हैं, यह चौथे आयाम की पुष्टि है । पाँचवां आयाम वह है जिसमें ब्रह्माण्डीय चेतना और आत्म–चेतना को परस्पर सम्बद्ध करके मानवी सत्ता को ईश्वर तुल्य बनाया जा सकना और उतना ही शक्ति सम्पन्न सिद्ध कर सकना सम्भव हो जायेगा । प्रति विश्व, प्रति कण आदि के रूप में ही संसार से बिल्कुल सटे एक ऐसे विश्व का अस्तित्व अगले दिनों सिद्ध होने जा रहा है जिसे पौराणिक काल के दैत्य–लोक के समतुल्य कहा जा सके । यह क्षेत्र भी पंचम आयाम की परिधि में आ जायेगा ।

संक्षेप में आयामों को स्थूल और सूक्ष्म प्रकृति का क्षेत्र कह सकते हैं । स्थूल की अनुभूतियाँ स्थूल शरीर सूक्ष्म उपकरणों से होती है, सूक्ष्म के लिए मस्तिष्क–प्राण जैसे उच्चस्तरीय चेतना–युक्त औजार प्रयुक्त करने पड़ते हैं ।

पाँचवां आयाम विशुद्ध चेतनात्मक है उसे ब्रह्माण्डीय चेतना के साथ जीव–चेतना के साथ जोड़ने की और उस स्थिति का असाधारण लाभ उठाने की प्रकिया कहा जा सकता है । आत्मा और परमात्मा का मिलना कितना आनन्ददायक, कितना शक्तिशाली, कितना प्रभावोत्पादक हो सकता है, इसकी आज ही समुचित चर्चा कर सकना भी अपनी भौतिक मनःस्थिति में सम्भव नहीं है, पर तत्वज्ञानी–सूक्ष्मदर्शी उसका रसास्वादन कर रहे हैं । इसी आधार पर वे देवात्मा बने हैं और दूसरों को अपनी नाव पर बिठाकर पार लगाया है ।

पाँच कोश इन्हीं पाँच आयामों का प्रतिनिधित्व करते हैं ।

पञ्चकोशी साधना का महत्व इसी दृष्टि से है कि हम जड़ के भीतर हर क्षेत्र में काम कर रहे चेतन के साथ अपना सम्बन्ध जोड़ सकें। पदार्थ का स्थूल उपयोग कर सकना ही पर्याप्त नहीं, उसकी मूल सत्ता को हस्तगत किया जा सके तो ही वास्तविक लाभ है। पाँच कोशों में प्रथम विद्युत पदार्थ-परक है। दूसरे को पदार्थ का ऊर्जा क्षेत्र कह सकते हैं। प्रथम अन्नमय और दूसरा प्राणमय कोश है।

आगे चेतना क्षेत्र आरम्भ होता है। व्यक्ति का ज्ञान क्षेत्र दो भागों में विभक्त है, एक ज्ञात दूसरा अविज्ञात। ज्ञात को मनोमय कोश कहते हैं। उसका प्रशिक्षण, सम्वर्धन, उपयोग, विचार-विमर्श एवं बौद्धिक आदान-प्रदान से सम्भव हो जाता है। उस क्षमता के विकसित होने पर मनुष्य बुद्धिमान कहा जाता है और बुद्धि शक्ति के सहारे जो लाभ मिल सकते हैं, उन्हें उठाता है। इसे मनोमय कोश समझा जाना चाहिए।

विज्ञानमय कोश मनःचेतना की गहरी परत है। 'चित्त' और 'अहंकार' के रूप में इसी की व्याख्या की जाती है। अतीन्द्रिय क्षमता का क्षेत्र यही है। सूक्ष्म जगत में प्रवेश करके अपने संसार की कारण भूत स्थिति के साथ सम्बन्ध जोड़ सकना इसी आधार पर सम्भव होता है। सिद्ध पुरुष इसी प्रक्रिया में प्रवीण होते हैं। ऋद्धि-सिद्धियाँ यहीं से उपलब्ध होती हैं।

व्यक्ति सत्ता का एक वर्गीकरण स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर के रूप में भी होता रहा है। पञ्च तत्वों से बना और प्रत्यक्ष होने के कारण यही अपना कामकाजी शरीर स्थूल कहलाता है। प्राण-शक्ति इसी की सामर्थ्य है। इसलिए अन्नमय और प्राणमय कोशों का सम्मिलित स्वरूप स्थूल-शरीर कहा जाता है। मनोमय कोश और सूक्ष्म शरीर पूर्णतया एक ही है। कारण शरीर को विज्ञानमय कोश समझा जाना चाहिए। भाव संवेदना का, मस्तिष्क की अतीन्द्रिय चेतना का समावेश यही है। आनन्दमय कोश का उतना अंश इसी क्षेत्र में आता है, जिसमें जीव-सत्ता और

परम–सत्ता के मिलन की आत्म–साक्षात्कार, ब्रह्म–साक्षात्कार जैसी दिव्य विभूतियाँ होती हैं । स्थिति प्रज्ञ, अवधूत, ब्रह्मज्ञानी, तत्वदर्शी, जीवन मुक्त इसी स्थिति में परिपक्व होते हैं ।

गायत्री के पाँच मुख–पाँच कोशों के प्रतीक हैं । इस साधना को पूरी करते हुए हम पूर्णता के लक्ष्य तक पहुँचते हैं । इन्हें परीक्षा के पाँच वर्ग एवं स्तर कह सकते हैं । विज्ञान के क्षेत्र में इन्हीं पाँच आयामों के रूप में व्याख्या की जाती है । आत्मिकी प्रगति के पथ पर हम जितने–जितने आगे बढ़ते हैं, उतने ही उतने दिव्य–विभूतियों से सुसम्पन्न बनते चले जाते हैं । उसे देव शक्तियों का अनुग्रह कहें या देवमाता की साधना प्रतिफल, बात एक ही है ।

पाँच कोशों के पाँच देवताओं का प्रथक से भी वर्णन मिलता है । अन्नमय कोश का सूर्य, प्राणमय का यम, मनोमय का इन्द्र, विज्ञानमय का पवन, और आनन्दमय कोश का देवता वरुण माना गया है । कुन्ती ने इन्हीं पाँचों देवताओं की साधना करके पाँच पाण्डवों को जन्म दिया था । वे देव पुत्र कहलाते थे ।

इन पाँच कोशों एवं देवताओं की पाँच सिद्धियाँ हैं–अन्नमय कोश की सिद्धि से निरोगिता, दीर्घजीवन एवं चिर यौवन का लाभ प्राप्त होता है । प्राणमय कोश से साहस, शौर्य, पराक्रम, प्रभाव, प्रतिभा जैसी विशेषतायें उभरती हैं । प्राण विद्युत की विशेषता से आकर्षण चुम्बक व्यक्तित्व में बढ़ता जाता है और प्रभावक्षेत्र में दूरदर्शिता, बुद्धिमत्ता बढ़ती है और उतार–चढ़ावों में धैर्य–सन्तुलन बना रहता है । विज्ञानमय कोश से सज्जनता का, उदार सहृदयता का विकास होता है और देवत्व की विशेषतायें उभरती हैं । अतीन्द्रिय ज्ञान अपरोक्षानुभूति, दिव्य दृष्टि जैसी उपलब्धियाँ विज्ञानमय कोश की हैं । आनन्दमय कोश के विकास से चिन्तन तथा कर्तृत्व दोनों ही इस स्तर के बन जाते हैं कि हर घड़ी आनन्द छाया रहे । संकटों का सामना ही न करना पड़े । ईश्वर दर्शन, आत्म–साक्षात्कार, स्वर्ग मुक्ति जैसी महान उपलब्धियाँ आनन्दमय कोश की ही देन हैं ।

जागरण एवं अनावरण शब्द पंच कोशों के परिष्कार की साधना में प्रयुक्त होते हैं । इन प्रसुप्त संस्थानों को जागृत- सक्रिय-सक्षम बनाकर चमत्कार दिखा सकने की स्थिति तक पहुँचा देना जागरण है । अनावरण का तात्पर्य है आवरणों को हटा दिया जाना । किसी जलते बल्व के ऊपर कई कपड़े ढँक दिए जायें तो उसमें प्रकाश तनिक भी दृष्टिगोचर नहीं होगा । इन आवरणों की एक-एक परत उठाने लगें तो प्रकाश का आभास क्रमशः बढ़ता जायगा । जब सब पर्दे हट जायेंगे तो बल्व अपने पूरे प्रकाश के साथ दिखाई पड़ने लगेगा । आत्मा के ऊपर इन पाँच शरीरों के पाँच आवरण पड़े हुए हैं, उन्हीं को भव-बन्धन कहते हैं । इनके हट जाने या उठ जाने पर ईश्वर-दर्शन, आत्म-साक्षात्कार एवं बन्धन-मुक्ति का लाभ मिलता है ।

अन्नमय कोश और उसका अनावरण

मनुष्य देह का विकास अन्न से होता है "अन्नादिभ्भवन्ति भूतानि" के अनुसार प्राणि संरचना में अन्न का प्रमुख भाग है । गर्भ में आने के साथ ही जीव उसकी आवश्यकता अनुभव करने लगता है । प्रारम्भ में नाभि-प्रदेश के माध्यम से और जन्म लेने के बाद से मुँह के माध्यम से वह अन्न ग्रहण करता है और इस तरह उसका शरीर बढ़ता-विकसित होता है । अन्न के अभाव में स्थूल काया दुबली पड़ जाती है, एक निश्चित अवधि के बाद भी अन्न न मिले तो मृत्यु तक हो सकती है । इस तरह अत्यन्त स्थूल और नाशवान होकर भी अन्नमय शरीर 'जीव' के दृश्य अस्तित्व का मूल आधार है । यह वह भवन है जिसमें जीव निवास करता है । यदि वह स्वच्छ, स्वस्थ और भव्य हो तो जीवन में आनन्द ही आनन्द है-टूटे-फूटे, सड़े-गले मकान में तो रहकर कोई भी खुश नहीं रह सकता । अन्नमय कोश स्थूल शरीर के तात्विक शरीर, उसकी महत्ता और उसे स्वस्थ समर्थ बनाए रखने की विद्या का नाम है । उसे न समझने वाले अज्ञानीजन शरीर को ही सुखों का मूल मानने की भूल

करते और इन्द्रिय सुखों में आसक्त होते हैं । शरीर की बाह्य सज–धज में दिन–रात लगे रहने के कारण उसमें निवास करने वाली जीवात्मा उपेक्षित होती है । यही अन्नमय कोश में आबद्ध होता है । शरीर की वस्तुस्थिति को समझकर युक्ता–युक्त आहार और व्यवस्थित जीवन क्रम अपनाना ही इस कोश का अनावरण कहलाता है ।

अन्न से ही मन बनता है, जैसा अन्न खाया जाता है वैसा ही मन बन जाता है । अध्यात्म का सारा क्रियाकलाप मन की स्थिति पर ही अवलम्बित रहता है । मन भी तमोगुण, रजोगुण में डूबा हुआ है, उस पर तृष्णा और वासना के मल–आवरण छाये हुए हों तो बाहरी उपायों से सुधार हो सकना कठिन है, हम देखते हैं कि रोज कथा–वार्त्ता कहने–सुनने वाले और धार्मिक कर्मकाण्डों में देर तक लगे रहने वाले व्यक्ति भी दुर्भावनाओं और दुष्प्रवृत्तियों को चरितार्थ करते रहते हैं । यह आश्चर्य की बात है कि जिसे धर्म का पर्याप्त ज्ञान है, जो दूसरों को भी ज्ञान का उपदेश देता है, वह अपने व्यावहारिक जीवन में अधर्म का आचरण करता रहता है । विचार करने पर उसका एक ही कारण प्रतीत होता है कि व्यक्ति का अन्तःकरण, मानसिक स्तर ही वह मर्मस्थल है जहाँ से प्रेरणाएँ और प्रवृत्तियाँ उत्पन्न होती हैं । बनावटी ढंग से आडम्बर के रूप में मनुष्य कुछ भी कहे या करे वस्तुतः उसकी प्रवृत्तियाँ उसी दिशा में अग्रसर होंगी जैसी कि उसकी मनोभूमि बनी हुई होगी ।

मनोभूमि के सुधारों में स्वाध्याय और सत्संग बहुत सहायक होता है, उपासना तथा दूसरे धार्मिक कर्मकाण्डों का भी बहुत कुछ असर होता है, पर सबसे अधिक प्रभाव अन्न का होता है । जिस प्रकार का, जिस स्तर का आहार किया जाता है, उसी तरह का मन बनता है । वस्तु जैसी कुछ बनी है, उसका प्रधान गुण तो वही रहेगा । सुधार और संस्कार से उसकी प्रगति में कुछ न कुछ तो अन्तर आता ही है, पर पूरा परिवर्तन नहीं होता । आज साधना मार्ग पर चलने वाले व्यक्ति आहार पर उतना ध्यान नहीं देते, जितना कि देना

चाहिए । फलस्वरूप तमोगुणी और रजोगुणी प्रकृति की वस्तुएँ खाते रहने पर मन का मूल स्वभाव भी वैसा ही बन जाता है । स्वाध्याय-सत्संग में उस पर नियंत्रण तो रहता है, पर जब कभी भीतर से कामना एवं वासना का प्रबल वेग उठता है, तो उस बाह्य नियंत्रण को तोड़-फोड़ कर मनुष्य को दुष्कर्म में प्रवृत्त कर देता है । दुष्प्रवृत्तियाँ रुक नहीं पातीं ।

इस कठिनाई का एक मात्र हल है कि श्रेय पथ का पथिक अपने आहार पर सबसे अधिक ध्यान दे । पंचकोशी गायत्री उपासना का आरम्भ अन्नमय कोश की शुद्धि से ही होता है । नींव पक्की न हुई तो आगे ऊँची दीवार उठाने और उसे स्थायी बनाने का कार्यक्रम क्या सफल हो सकेगा ? जो व्यक्ति जिह्वा के गुलाम हैं, चटोरपन ने जिन्हें अपने वश में कर रखा है, स्वादेन्द्रिय पर जो नियंत्रण नहीं कर सकते, शुद्ध आहार की प्राप्ति में जो कष्ट और असुविधा उठानी पड़ती है उसे सहन कर सकना जिनके वश की बात न हो, उन्हें योगाभ्यास, आत्मोत्कर्ष, लक्ष्य की पूर्ति, स्वर्ग-मुक्ति जैसे स्वप्न नहीं ही देखने चाहिए । अध्यात्म शूरवीरों का मार्ग है । साधना को संग्राम कहा गया है । इसमें षड्रिपुओं के चक्रव्यूहों को तोड़ने के लिए घनघोर युद्ध करना पड़ता है । गीता में कृष्ण ने धनुर्धर अर्जुन को जिस महाभारत में प्रवृत्त किया है वह वस्तुतः आन्तरिक शत्रुओं से लड़ने का ही प्रशिक्षण है । अपनी दुर्बलता से लड़ पड़ने का प्रबल पुरुषार्थ किये बिना जीवन मुक्ति की विजय वैजयन्ती धारण कर सकना किसी के लिए भी संभव नहीं होता ।

गायत्री उपासना की उच्चस्तरीय साधना में प्रवेश करने वाले योद्धा को सर्वप्रथम स्वादेन्द्रिय से लड़ने और आहार शुद्धि की सुव्यवस्था बनानी होगी, उसकी उपेक्षा करने से आगे का मार्ग अवरुद्ध ही पड़ा रहेगा । यह बात हर उच्चस्तरीय साधक को कान खोलकर सुन लेनी चाहिए और सुन-समझकर गाँठ बाँध लेनी चाहिए कि आहार को सात्विक बनाये बिना किसी भी प्रकार काम

चलने वाला नहीं है । जो साधक मिष्ठान्न, पकवान और माल–मलाई विपुल परिमाण में चरते रहते हैं, उन्हें वासनाएँ ऐसे ही पथ भ्रष्ट कर देती हैं जैसे मुर्गे की गर्दन को बिल्ली मरोड़ कर रख देती है । ऐसे साधकों को पग–पग पर आलस, प्रमाद सताता है और वासना–तृष्णा की मृगमरीचिका उन्हें निरन्तर भ्रमाती, भटकाती रहती है ।

अन्नमय कोश की साधना का प्रारंभिक कदम 'इन्द्रिय निग्रह' है । यों ज्ञानेन्द्रियाँ पाँच मानी जाती हैं, पर उनमें दो ही प्रधान हैं–(१) स्वादेन्द्रिय, (२) कामेन्द्रिय । इनमें से स्वादेन्द्रिय प्रधान है । उसके वश में आने से कामेन्द्रिय भी वश में आ जाती है । जीभ का स्वाद जिसने जीता वह विषय वासना पर भी अंकुश रख सकेगा । चटोरा आदमी ब्रह्मचर्य से नहीं रह सकता, उसे सभी इन्द्रियाँ परेशान करती हैं । विशेष रूप से काम–वासना तो काबू में आती ही नहीं । इसलिए इन्द्रिय निग्रह की तपश्चर्या स्वाद को–जीभ को वश में करने से आरम्भ की जाती है ।

अन्न, शाक और दूध में उतना नमक और उतनी शक्कर मौजूद है जितनी स्वास्थ्य रक्षा के लिए उपयुक्त एवं आवश्यक है । सृष्टि के सभी प्राणी स्वाभाविक आहार में से ही अपनी नमक, शक्कर की आवश्यकता पूरी करते हैं, कोई भी जीव–जन्तु ऐसा नहीं है, जो अलग से इन चीजों को अपने स्वाभाविक भोजन में सम्मिलित करता हो । मनुष्य ही एक ऐसा विलक्षण जीव है जिसने प्रकृति प्रदत्त स्वाभाविक भोजन को नमक और शक्कर से चटपटा करके ऐसा बना दिया है जिससे न तो भोजन की उपयुक्तता का पता चलता है और न मात्रा का । स्वाद ही स्वाद में जीभ धोखा खाती रहती है । अखाद्य पदार्थों को अनावश्यक मात्रा में उदरस्थ करती रहती है । फलस्वरूप हमें अपने आरोग्य और दीर्घ जीवन की बलि इस चटोरपन की वेदी पर चढ़ानी पड़ती है ।

यदि भोजन में नमक और शक्कर न मिलाया जाय, मसाले न

डाले जायें तो वह अपने स्वाभाविक रूप में रहेगा । फिर यह पहचानना सरल होगा कि कौन भोजन उपयुक्त है और कौन अनुपयुक्त ? अभी तो पाक–कला के आधार पर माँस जैसे घृणित, दुर्गन्धित और सर्वथा हानिकारक पदार्थ तक को मिर्च–मसालों के बल पर स्वादिष्ट बना लिया जाता है और बेचारा मुख यह परीक्षा भी नहीं कर पाता कि यह खाद्य है या अखाद्य । यदि मसाले न पड़ें तो जीभ उसके वास्तविक गुण–दोषों को जान लेगी और तब माँस को गले से नीचे उतार सकना कठिन होगा । इसी प्रकार पेट भर जाने पर भी स्वाद ही स्वाद में जो ठूँसाठाँसी होती है, वह भी रुक जायगी और आरोग्य के मार्ग में खड़ी हुई एक सबसे बड़ी बाधा दूर हो जायगी ।

आरोग्य ही नहीं, मन को वासनासक्त होने से रोकने की दृष्टि से भी यह आवश्यक है कि स्वादेन्द्रिय पर अंकुश लगाया जाय । इस दृष्टि से नमक और मीठा दोनों को ही छोड़ देना अच्छा रहता है । यह निराधार भय है कि इससे स्वास्थ्य खराब हो जायगा । सच तो यह है कि इस संयम से पाचनक्रिया ठीक होती है, रक्त शुद्ध होता है, इन्द्रियाँ सशक्त रहती हैं, तेज बढ़ता है और जीवनकाल बढ़ जाता है । इनसे भी बड़ा लाभ यह है कि मन काबू में आता है ।

चटोरेपन को रोक देने से वासना पर जो नियंत्रण होता है, वह धीरे–धीरे सभी इन्द्रियों को वश में करने वाला सिद्ध होता है । जिस प्रकार पाँचों ज्ञानेन्द्रियों में स्वादेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय ही प्रबल हैं, उसी प्रकार स्वाद के षट् रसों में नमक और मीठा ही प्रधान है । चरपरा, खट्टा, कसैला आदि तो उनके सहायक रस मात्र हैं । इन दो प्रधान रसों पर संयम प्राप्त करना षट्रसों को त्यागने के बराबर ही है । जिसने स्वाद और काम–प्रवृत्ति को जीता उसकी सभी इन्द्रियाँ वश में हो गईं, जिसने नमक, मीठा छोड़ा, उसने छहों रसों को त्याग दिया, ऐसा ही समझना चाहिए । मन को वश में करने लिए यह संयम–साधना हर साधक को किसी न किसी रूप में करनी होती है ।

इस दिशा में कदम उठाना ही चाहिए । आरम्भ में वह छोटा हो तो भी हर्ज नहीं । सप्ताह में एक दिन 'अस्वाद व्रत' रखना किसी के लिए भी कठिन नहीं होना चाहिए । रविवार या गुरुवार के दिन उसके लिए अधिक उपयुक्त हैं । उस दिन जो भी भोजन किया जाय उसमें नमक, मीठा मिला हुआ न हो । उबले हुए आलू, टमाटर, दही, दूध उबले हुए अन्न, शाक, बिना नमक मसाले की अलौनी दाल आदि के साथ रोटी खा लेना बिल्कुल साधारण सी बात है । दो-चार बार चटोरापन की पुरानी आदत के अनुसार अखरेगा तो सही पर सन्तोष और धैर्यपूर्वक उस भोजन को भूख बुझाने जितनी मात्रा में आसानी से खाया जा सकेगा । दो चार बार के अभ्यास से तो वह अलौना भोजन ही स्वादिष्ट लगने लगेगा । अलौनेपन का अपना एक अलग ही स्वाद है और वह जिन्हें पसन्द आ जाता है उन्हें दूसरे स्वाद रुचते ही नहीं ।

अस्वाद-व्रत अपने आप में एक महान व्रत है । महात्मा गाँधी ने इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है और अपने सप्त महाव्रतों में इसे प्रमुख स्थान दिया है, सप्ताह में एक दिन भी इसे पालन किया जाय तो मन की संयम शक्ति और दृढ़ता बढ़ती है । यह बढ़ोत्तरी धीरे-धीरे मनुष्य में उन गुणों का भी विकास कर देती है, जो महान पुरुषों में होने ही चाहिए ।

अस्वाद-व्रत के दिन यदि एक ही समय भोजन किया जाय तो और भी उत्तम है । इससे पेट को विश्राम मिलेगा और राष्ट्र की खाद्य समस्या सुलझाने के लिए अन्न की मितव्ययिता का देश भक्तिपूर्ण सत्कर्म भी सहज ही बन पड़ेगा । दोपहर को भोजन लिया जाय, इसके अतिरिक्त सबेरे या रात को भूख लगे तो दूध-छाछ आदि कोई पतली चीज ली जा सकती है । दोपहर के भोजन में भी अनेक कटोरियाँ सजाने की अपेक्षा यदि रोटी के साथ शाक, दाल, दही आदि में से कोई एक ही वस्तु लगाकर खाने के लिए रखी जाय तो और उत्तम है । एक साथ अनेक प्रकार की चीजें खाने से

पाचन क्रिया बिगड़ती है, यह सर्वविदित तथ्य है । स्वाद के लिए ही लोग नाना प्रकार के व्यंजन बनाते और थाल सजाते हैं । स्वास्थ्य की दृष्टि से तो जितनी कम चीजें एक साथ खाई जायें उतना ही पाचन ठीक होता है । इसलिए स्वास्थ्य की दृष्टि से भी और समय की दृष्टि से भी रोटी के साथ एक ही वस्तु लगाने के लिए रखी जाय तो अधिक उपयुक्त है ।

यह अस्वाद–व्रत जिसमें एक समय, एक ही लगावन के साथ रोटी खाई जाय, उस रूढ़िमात्र के उपवास से हजार गुना उत्तम है जिसमें केवल अन्न छोड़ा जाता है और नाना प्रकार के मिष्ठान्न, कूटू, सिंघाड़ा आदि के पकवान, चाट–पकौड़े, सेंधा नमक और काली मिर्च से भरपूर बनाकर साधारण दिनों से भी अधिक मात्रा में उदरस्थ किये जाते हैं । कुछ लोग अन्नाहार त्याग कर अरबी, शकरकन्द, खीरा, सड़े या कच्चे सस्ते फल आदि पेट में गड़बड़ी उत्पन्न करने वाली सस्ती चीजें उपवास में खा जाते हैं, इससे उन्हें उल्टी हानि उठानी पड़ती है । उपवास ही करना हो तो उसके लिए दूध या छाछ पर रहना चाहिए । फल लेना हो तो सुपाच्य और ठीक प्रकार पके हुए फल देख–परख कर ही लेने चाहिए । अविवेकपूर्ण फलाहार से उपवास का उद्देश्य पूर्ण नहीं होता, करना हो तो उसे विचारपूर्वक ही करना चाहिए अन्यथा एक समय भोजन का उपर्युक्त विधि से किया हुआ अस्वाद व्रत भी एक प्रकार का उपवास ही है । उपवास किसी भी प्रकार का क्यों न हो उसमें अस्वाद व्रत का समावेश अवश्य होना चाहिए ।

अस्वाद व्रत जीवन का अंग बन जाये, उसके बाद दूसरा कदम विभिन्न प्रकार के व्यंजनों से भरी थाली भोजन करने की अपेक्षा, दिन में बार–बार भोजन करने की अपेक्षा एक खावन और एक लगावन तथा दिन में केवल दो बार भोजन लेने की परम्परा डाली जाये, बीच में आवश्यक हो तो तरल पदार्थ दूध–छाछ अथवा रसदार फल ले लिए जायें । मिर्च–मसालों का सीमित प्रयोग हो ।

यह साधना का एक पक्ष ही है । वस्तुतः यह मन को स्वस्थ, शरीर को निरालस्य और ब्रह्मचर्य संकल्प से ओत-प्रोत बनाने के लिए है । आहार शुद्धि से स्वतः मन उसके लिए स्फूर्त होता है, पर पूर्व अभ्यास के कारण कभी विकार उठें भी तो उन्हें हठात् रोका जाये और मन को अधिकाधिक आत्म विकास की ओर उन्मुख रखा जाय ।

अन्नमय कोश के शोधन का दूसरा व्रत कुछ दिन बाद यह लेना चाहिए कि सप्ताह में एक दिन अथवा कम से कम एक समय उपवास किया जाय अब तक अस्वाद व्रत ही पर्याप्त माना जाता था, उपवास अनिवार्य नहीं था, पर अब इसमें क्रमशः उच्चस्तरीय साधकों को सप्ताह में एक दिन या एक समय उपवास भी करना चाहिए । जिन्हें पूरे दिन उपवास करना हो वे फलाहार, शाक का रस, दूध, छाछ जैसी हलकी वस्तुएँ लें, जिन्हें कठिन शारीरिक श्रम करना पड़ता है या शरीर से बहुत दुर्बल हैं उनके लिए एक समय का उपवास भी पर्याप्त है, इसके अतिरिक्त दूध आदि आवश्यकतानुसार लिया जा सकता है । अस्वाद व्रत में अलौना आहार भी चल सकता है । जिसके लिए जैसी सुविधा हो उसे अपनी स्थिति के अनुसार निर्णय कर लेना चाहिए और उस पर दृढ़तापूर्वक आरूढ़ रहना चाहिए ।

उपवास में बचाया हुआ अन्न या उसका मूल्य हर एक को ज्ञान-यज्ञ के लिए अपने पास सुरक्षित रखना चाहिए । पेट का हिस्सा काटकर आत्मा को भोजन देने में ही उसका उपयोग हो । घर में गायत्री ज्ञान मन्दिर की स्थापना होनी चाहिए । यह छोटा-सा घरेलू पुस्तकालय निरन्तर बढ़ता रहे इसके लिए उपवास से बचाये हुए अन्न का मूल्य खर्च किया जाता रहे । नैतिक आध्यात्मिक एवं जीवन को ऊँचा उठाने वाले साहित्य का घरेलू पुस्तकालय एक छोटे गायत्री मन्दिर के ही समान है । घर के प्रत्येक व्यक्ति को स्वाध्याय का अवसर मिलने लगे तो यह उपवास का क्रम साधक के लिए ही नहीं उसके सारे परिवार के लिए श्रेयस्कर सिद्ध हो सकता है ।

ब्रह्मचर्य के सम्बन्ध में अपेक्षाकृत हर वर्ष कुछ कड़ाई बढ़ाते ही

चलना चाहिए । गृहस्थ होते हुए भी साधकों को अधिकाधिक ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए । इससे आत्म-बल बढ़ता है, स्वास्थ्य सुधरता है, मानसिक शक्ति एवं बुद्धि में तीव्रता आती है, दीर्घजीवन सुलभ होता है और सन्तान की संख्या बढ़ने से परिवार का अर्थ सन्तुलन बिगड़ने से बच जाता है । पत्नी की सबसे बड़ी सेवा यही हो सकती है कि उसे अधिकाधिक ब्रह्मचर्य से रहने देकर निरोगिता एवं सन्तान पालन के असह्य भार से बचने का लाभ प्राप्त करने दिया जाय । इस सुविधा के प्राप्त होने पर ही वह पति तथा परिवार की अधिक सेवा कर सकने में समर्थ हो सकती है ।

ब्रह्मचर्य की लम्बी मर्यादाएँ पालन करने वाले, असंयम से बचे रहने वाले पति-पत्नी ही सुयोग्य संतान उत्पन्न कर सकते हैं । युग-निर्माण के उपयुक्त नई पीढ़ी को जन्म देने के लिए यह आवश्यक है कि गृहस्थ में भी वासनात्मक संयम का कड़ाई से पालन किया जाय और इन्द्रिय निग्रह की अवधि अधिकाधिक लम्बी बनाई जाती रहे । गायत्री उपासना में संलग्न पति-पत्नी स्वाध्याय और परस्पर विचार-विनिमय द्वारा भावनात्मक उत्कर्ष करते रहें । साथ ही परमार्थिक कार्यों में भी आवश्यक अभिरुचि लेते रहें तो उनके शरीरों में वे तत्व उत्पन्न हो सकते हैं जिनके कारण नर-रत्नों को जन्म दे सकना संभव होता है । हमारी हार्दिक इच्छा है कि गायत्री परिवार के सद्गृहस्थों के यहाँ उच्चकोटि की आत्माएँ जन्म लें । युग निर्माण के लिए बड़ी ही विभूतियों की आवश्यकता पड़ेगी । दशरथ-कौशिल्या, वसुदेव-देवकी, दुष्यन्त-शकुन्तला की तरह प्रबुद्ध दम्पत्ति ही यह सौभाग्य लाभ प्राप्त कर सकते हैं । पंचकोशी गायत्री उपासना में अन्नमय कोश का अनावरण करने का प्रयत्न करते हुए साधक यदि ब्रह्मचर्य को अधिकाधिक महत्व देते रहें और अपने साथ ही पत्नी का आत्मिक स्तर ऊँचा उठाने का प्रयत्न करते रहें तो गायत्री माता के अन्य वरदानों के साथ यह वरदान भी मिल सकता है कि इतिहास में अपना और अपने माता-पिता का नाम अमर करने वाली सुसन्तति उन्हें प्राप्त हो ।

प्राणमय कोश और उसका विकास

भारतीय मान्यता है कि मनुष्य की स्थूल काया में व्याप्त उसी के अनुरूप एक प्राण शरीर भी होता है । प्राण शरीर–शरीरस्थ प्राण संस्थान के न केवल अस्तित्व का बल्कि उसके गुण, धर्म तथा क्रिया–कलापों, प्रभावों आदि का भी वर्णन विस्तारपूर्वक भारतीय ग्रन्थों में मिलता है । इस मान्यता को स्थूल विज्ञान बहुत दिनों तक झुठलाता रहा, किन्तु शरीर विज्ञान के सन्दर्भ में जैसे–जैसे उनकी जानकारियाँ बढ़ रही हैं, प्राण संस्थान के अस्तित्व को एक सुनिश्चित तथ्य के रूप में स्वीकार किया जाने लगा है । भौतिक विज्ञान के स्थूल उपकरणों की पकड़ में भी इस सूक्ष्म सत्ता के अनेक प्रमाण आने लगे हैं ।

रूस के इलेक्ट्रॉनिक विज्ञानवेत्ता ऐमयोन किर्लियान ने एक ऐसी फोटोग्राफी का आविष्कार किया है, जो मनुष्य के इर्द–गिर्द होने वाली विद्युतीय हलचलों का भी छायांकन करती है । इससे प्रतीत होता है कि स्थूल शरीर के साथ–साथ सूक्ष्म शरीर की भी सत्ता विद्यमान है और वह ऐसे पदार्थों से बनी है, जो इलेक्ट्रॉनों से बने ठोस पदार्थ की अपेक्षा भिन्न स्तर की है और अधिक गतिशील भी ।

इंग्लैण्ड के डॉक्टर किलनर एक बार अस्पताल में रोगियों का परीक्षण कर रहे थे । एक मरणासन्न रोगी की जाँच करते समय उन्होंने देखा कि उनकी दूरबीन (माइकोस्कोप) के शीशे पर एक विचित्र प्रकार के रंगीन प्रकाश कण जम गये हैं, जो आज तक कभी भी देखे नहीं गये थे । दूसरे दिन उसी रोगी के कपड़े उतरवाकर जाँच करते समय डॉ. किलनर फिर चौंके । उन्होंने देखा, जो प्रकाश कल दिखाई पड़ा था आज वह लहरों के रूप में

माइक्रोस्कोप के शीशे के सामने उड़ रहा है । रोगी के शरीर के चारों ओर छः-सात इञ्च की परिधि में यह प्रकाश फैला है, उसमें कई दुर्लभ रासायनिक तत्वों के प्रकाश कण भी थे । उन्होंने देखा कि जब-जब प्रकाश मन्द पड़ता है, तब-तब उसके शरीर और नाड़ी की गति में शिथिलता आ जाती है । थोड़ी देर बाद एकाएक प्रकाश-पुञ्ज विलुप्त हो गया । अब की बार जब उन्होंने नाड़ी पर हाथ रखा तो पाया कि उसकी मृत्यु हो गई है । इस घटना को कई पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कराने के साथ-साथ डॉ. किलनर ने विश्वास व्यक्त किया कि जिस द्रव्य में जीवन के मौलिक गुण विद्यमान होते हैं, वह पदार्थ से प्रथक एक अति सूक्ष्म सत्ता है ।

प्राण तत्व को एक चेतन ऊर्जा (लाइव एनर्जी) कहा गया है । भौतिक विज्ञान के अनुसार एनर्जी के छः प्रकार माने जाते हैं-१. ताप (हीट), २. प्रकाश (लाइट), ३. चुम्बकीय (मैगनैटिक), ४. विद्युत (इलैक्ट्रीसिटी), ५. ध्वनि (साउण्ड), ६. घर्षण (फ्रक्शन) अथवा यान्त्रिक (मैकेनिकल) । एक प्रकार की एनर्जी को किसी भी दूसरे प्रकार की एनर्जी में भी बदला जा सकता है । शरीरस्थ चेतन क्षमता (लाइव एनर्जी) इन विज्ञान सम्मत प्रकारों से भिन्न होते हुए भी उनके माध्यम से जानी समझी जा सकती है ।

एनर्जी के बारे में वैज्ञानिक मान्यता है कि वह नष्ट नहीं होती बल्कि उसका केवल रूपान्तरण होता है । यह भी माना जाता है कि एनर्जी किसी भी स्थूल पदार्थ से सम्बद्ध रह सकती है, फिर भी उसका अस्तित्व उससे भिन्न है और वह एक पदार्थ से दूसरे पदार्थ में स्थानान्तरित (ट्रान्स्फर) की जा सकती है । प्राण के सन्दर्भ में भी भारतीय दृष्टाओं का यही कथन है कि अब तो पाश्चात्य वैज्ञानिक भी इसे स्वीकार करने लगे हैं ।

इस सन्दर्भ में फोटोग्राफ, प्रकाश के बल्ब के आविष्कर्त्ता टामस एडिसन ने अत्यन्त बोधगम्य प्रकाश डालते हुए लिखा है-"प्राणी की सत्ता उच्चस्तरीय विद्युत-कण गुच्छकों के रूप में तब

भी बनी रहती है, जब वह शरीर से पृथक हो जाती है । मृत्यु के पश्चात् यह गुच्छक विधिवत् तो नहीं होते, पर वे परस्पर सम्बन्ध बनाये रहते हैं । यह बिखरते नहीं, वरन् आकाश में भ्रमण करते रहने के उपरान्त पुनः जीवन चक्र में प्रवेश करते और नया जन्म धारण करते हैं । इनकी बनावट बहुत कुछ मधुमक्खी के छत्ते की तरह होती है । पुराना छत्ता वे एक साथ छोड़ती हैं और नया एक साथ बनाती हैं । इसी प्रकार उच्चस्तरीय विद्युत कणों के गुच्छक अपने साथ स्थूल शरीर की सामग्री अपनी आस्थाओं और संवेदनाओं के साथ लेकर जन्मने-मरने पर भी अमर बने रहते हैं ।

इन प्रमाणों से शरीर में अन्नमय कोश से सम्बद्ध किन्तु एक स्वतंत्र अस्तित्व सम्पन्न प्राणमय कोश का होना स्वीकार करना पड़ता है । यों भी शरीर में विज्ञान-सम्मत ताप आदि छहो प्रकार की एनर्जी ऊर्जा के प्रमाण पाये जाते हैं, किन्तु सारे शरीर में संव्याप्त प्राणमय कोश का स्वरूप सबसे अधिक स्पष्टता से जैवीय विद्युत (बायो इलैक्ट्रिसिटी) के रूप में समझा जा सकता है ।

शरीर वैज्ञानिक यह मानते हैं कि हृदय मस्तिष्क तथा नेत्र-विद्युत उत्पादन का कार्य करते हैं । ई. ई. जी. पेसमेकर, ई. सी. जी., ई. आर. जी. इन्हीं विद्युत स्पन्दनों को यन्त्र पर अंकित करते हैं । स्नायु संस्थान के रोगों के प्राणांकन के लिए ई. एम. जी. (इलेक्ट्रो मायोग्राफ) का प्रयोग होता है । त्वचा तक विद्युत उत्पादन करती है, जिसे गैल्वनिक स्किन रिस्पोंस पद्धति से जाना जाता है ।

शरीर की हर क्रिया का संचालन प्राण द्वारा होने की बात भी सदैव से कही जाती रही है । योग ग्रन्थों में शरीर की विभिन्न क्रियाओं को संचालित करने वाले प्राण-तत्व को विभिन्न नामों से सम्बोधित किया गया है । उन्हें पंच प्राण कहा गया है । इसी प्रकार शरीर के विभिन्न क्षेत्रों में सक्रिय प्राण को पंच उपप्राण कहा गया है । वर्तमान शरीर ने भी शारीरिक अन्तरंग क्रियाओं की व्यवस्थाएँ विद्युत संचार क्रम के ही आधार पर की हैं । शरीर के

एक सिरे से दूसरे सिरे तक जो संचार क्रम चलता है, वह विद्युतीय संवहन प्रक्रिया के माध्यम से ही है । संचार कोशिकाओं में ऋण और धन प्रभार (निगेटिव और पॉजीटिव चार्ज) अन्दर बाहर रहते हैं और इन्हीं से विभिन्न संचार–क्रम चलते रहते हैं । इसे वैज्ञानिक भाषा में सैल का डिपोलराइजेशन तथा रीपीलाइजेशन कहते हैं । यह प्रक्रिया भारतीय मान्यतानुसार पंचप्राणों में वर्णित 'व्यान' के अनुरूप है ।

आमाशय और आँतों का भोजन पाचन होकर उसे शरीर के अनुकूल रासायनिक रसों में बदल दिया जाता है । वह रस आँत की झिल्ली में से पार होकर रस में मिलते हैं तथा सारे शरीर में फैल जाते हैं । कुछ रसायन तो सामान्य संचरण क्रम से ही रक्त में मिल जाते हैं, किन्तु कुछ के लिए शरीर को शक्ति खर्च करनी पड़ती है । इस विधि को एक्टिव ट्रांसपोर्ट (सक्रिय परिवहन) कहते हैं । यह परिवहन आँतों में जो विद्युतीय प्रक्रिया होती है उसे वैज्ञानिक 'सोडियम पप' के नाम से संबोधित करते हैं । सोडियम कणों में ऋण और धन प्रभार बदलने से वह सैलों की दीवार के इस पार से उस पार जाते आते हैं । उनके संसर्ग से शरीर के पोषक रसों (ग्लूकोज, वसा आदि) की भेदकता बढ़ जाती है तथा वह भी उनके साथ संचरित हो जाते हैं । यह प्रक्रिया पंच–प्राणों में 'प्राण–वर्ग' के अनुरूप कही जा सकती है ।

ऐसी प्रक्रिया हर सैल में चलती है । हर सैल अपने उपयुक्त आहार खींचता है तथा उसे ताप ऊर्जा में बदलता है । ताप ऊर्जा भी हर समय सारे शरीर में लगातार पैदा होती है और संचरित होती रहती है । पाचन केवल आँतों में नहीं शरीर के हर सैल में होता है । उसके लिए रसों को हर सैल तक पहुँचाया जाता है । यह प्रक्रिया जिस प्राण ऊर्जा के सहारे चलती है उसे भारतीय प्राणवेत्ताओं ने 'समान' कहा है । इसी प्रकार हर कोशिका में रस परिपाक के दौरान तथा पुरानी कोशिकाओं के विखण्डन से जो मल बहता है उसके निष्कासन के लिए भी विद्युत रासायनिक

(इलैक्ट्रो कैमिकल) क्रियायें उत्तरदायी हैं । प्राणि विज्ञान में इसे 'अपान' की प्रक्रिया कहा गया है ।

पंच प्राणों में एक वर्ग 'उदान' भी है । इसका कार्य शरीर के अवयवों को कड़ा रखना है । वैज्ञानिक भाषा में इसे इलैक्ट्रिकल स्टिमुलाइजेशन कहा जाता है । शरीरस्थ विद्युत संवेगों से अन्नमय कोश के सैल किसी भी कार्य के लिए कड़े अथवा ढीले होते रहते हैं ।

शरीर में इस प्रकार की अन्तरंग प्रक्रियायें कैसे चलती हैं इसकी व्याख्या वैज्ञानिक पूरी तरह नहीं कर सके हैं । उसके लिए उन्होंने कई तरह के स्थूल सिद्धान्त बनाये हैं । सोडियम पोटेशियम साइकिल, पोटेशियम पम्प, ए. टी. पी., ए. डी. पी. सिस्टम तथा साइकिलक ए. एम. पी. आदि के हैं । इनकी क्रिया–पद्धति तो कोई रसायन विज्ञान का विद्यार्थी ही ठीक से समझ सकता है, किन्तु है यह सब 'विद्युत रासायनिक' सिद्धान्त ही । इस सिद्धान्त के अनुसार किसी घोल में रासायनिक पदार्थों के अणु ऋृण और धन प्रभाकर युक्त भिन्न–भिन्न कणों में विभक्त हो जाते हैं । इन्हें अयन कहा जाता है । इन अयनों की संचार क्षमता बहुत अधिक होती है । इच्छित संचार के बाद ऋृण और धन प्रभार युक्त अयन मिलकर पुनः विद्युतीय दृष्टि से उदासीन (न्यूट्रल) अणु बना लेते हैं । शरीर में पाचन, शोधन, विकास एवं निर्माण की अगणित प्रक्रियायें इसी आधार पर चल रही हैं । तत्व दृष्टि से देखा जाय तो सारे शरीर संस्थान में प्राणतत्व की सत्ता और सक्रियता स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ेगी ।

इन मोटी गतिविधियों से आगे बढ़कर शरीर की सूक्ष्म, गहन गतिविधियों का विश्लेषण करने पर उनमें भी प्राण शरीरस्थ प्राण तत्व का नियन्त्रण तथा प्रभाव दिखाई देता है । शरीर में हारमोनों और एन्जाइमों की अद्‌भुत प्रक्रिया सर्वविदित है । इन दोनों की सक्रियता शरीर में आश्चर्यजनक परिवर्तन लाने एवं शक्ति संचार करने में समर्थ है । प्रजनन विज्ञान के अन्तर्गत जीन्स की विलक्षण

भूमिका की चर्चा आजकल वैज्ञानिक क्षेत्र में सर्वत्र की जाती है इन सभी को विद्युत चुम्बकीय संवेगों द्वारा प्रभावित किए जाने की सम्भावना वैज्ञानिक स्वीकार करते हैं । वह अभी ऐसा कर नहीं सके हैं, किन्तु उस पर विश्वास करते हैं तथा उसके लिए तीव्र शोध कार्य किए जा रहे हैं । विश्वास किया जाता है कि ऐसी विधि हाथ लग जाये तो शरीर क्षेत्र में हर चमत्कार सम्भव हो जायगा ।

भारतीय ऋषियों ने प्राण–प्रक्रिया द्वारा शरीरस्थ संस्थान में चमत्कारी परिवर्तन लाने के लिए प्राणमय कोश की शुद्धि, शरीरस्थ प्राण ऊर्जा के प्रयोग की बात बलपूर्वक कही है । वह कोई अतिशयोक्ति नहीं । स्थूल विज्ञान की दृष्टि से ही मस्तिष्क एवं हृदय जैसे विलक्षण केन्द्रों से लेकर त्वचा तक व्याप्त प्राण संस्थान तथा उसके प्रभाव को स्वीकार किया जा रहा है । योग दृष्टि तो इससे भी सूक्ष्म नहीं है । उसके द्वारा जो निष्कर्ष निकाले गये हैं वे और भी अधिक गहन और व्यापक स्तर के रहस्यों तथा तथ्यों को प्रकट करने वाले होने ही चाहिए । अस्तु 'प्राणमय कोश को परिष्कृत एवं सबल बनाकर न केवल अपने शरीर बल्कि दूसरे शरीरों को भी प्रभावित एवं विकसित करने की बात कोई अतिशयोक्ति नहीं है । प्राणतत्व सम्बन्धी विज्ञान जैसे–जैसे प्रगति करेगा भारतीय तत्वदृष्टाओं की विलक्षण किन्तु तथ्यपूर्ण घोषणाओं को नतमस्तक होकर स्वीकार करता चलेगा ।

सामान्य गायत्री उपासना से मानवीय शरीर और अन्तःकरण में प्राण शक्ति का ही अवधान होता है । जितनी मात्रा में प्राण शक्ति का अपने भीतर विकास होता है, शरीर में उतनी ही स्फूर्ति, चैतन्यता, आकर्षण, नेत्रों में चमक, सुगन्ध आदि बढ़ते हैं । मन में हर घड़ी उल्लास छाया रहता है । दीर्घजीवन प्राणवान् व्यक्तियों को मिलता है । प्रतिष्ठा प्राणवानों को मिलती है । सफलता भी प्राणवानों का वरण करती है । यदि किसी को बिना श्रम मिल भी जाये तो निष्प्राण व्यक्ति उसे सुरक्षित तक नहीं रख सकते । योग

साधनायें और अतीन्द्र अनुभूतियों के मूल में यह प्राणसत्ता ही आधारभूत हुआ करती है ।

प्राणशक्ति से अधिक मात्रा उपार्जन के लिए प्राणमय कोश की प्राणायाम क्रियायें सफल करनी पड़ती हैं । यह प्राण आकाश में भरा पड़ा और वायु में घुला रहता है, पर श्वाँसों का क्रम सामान्य होने से उसकी उतनी ही मात्रा उपलब्ध हो पाती है, जितनी शरीर धारण किये रहने को आवश्यक हो । विशिष्ट प्रयोजनों के लिए उसका बड़ी मात्रा में उपार्जन प्राणायाम की क्रिया से होता है । प्राणायाम यों देखने में (१) श्वाँस खींचने (पूरक क्रिया) (२) कुछ देर श्वाँस भीतर फेंफड़े में रोकने (अन्तःकुम्भक) (३) श्वाँस धीरे–धीरे बाहर निकालने (रेचक क्रिया) (४) कुछ देर बिना श्वाँस रहने (बाह्य कुम्भक) मात्र जितनी क्रिया कहलाता है, पर उसकी प्रतिक्रिया असीम शक्ति संभावनाओं से ओत–प्रोत रहती है । प्राणमय कोश के विकास में लिए यों प्राणाकर्षण प्राणायाम मस्तिष्क उज्जायी तथा नाड़ी शोधन प्राणायाम बहुत उपयोगी रहती है पर पंचकोशों की अनावरण साधना में लोम–विलोम सूर्यविधन प्राणायाम का महत्व अधिक है । इन प्राणायामों की विधि–विस्तार से इसी अनुक्रम की पुस्तक गायत्री की प्रचण्ड प्राण ऊर्जा में दी है उसके अनुसार इस कोश के अनावरण के इच्छुक साधक उन प्राणायामों का अवलम्बन कर सकते हैं ।

मनोमय कोश की साधनाएँ सर्वार्थ सिद्धि

मनोमय कोश मस्तिष्क के मन और बुद्धि संस्थानों से सम्बन्धित है । उसकी साधना हमारी बुद्धि, कल्पना, स्मरण शक्ति आदि क्षेत्रों को सुविकसित करती है । कालिदास, बरदराज जैसे मन्दमति प्रयत्न पुरुषार्थ से विद्वान्–बुद्धिमान बने थे । यह अनगढ़ और सुगढ़ बनाने की प्रक्रिया है । इसे प्रशिक्षण द्वारा विकसित करने का उपाय सर्वविदित है । अध्यात्म प्रयत्नों द्वारा इस प्रयोजन को किस प्रकार पूरा किया जाय, उसी के प्रयोग से मनोमयकोश की साधना सहायता करती है ।

इस साधना का दूसरा क्षेत्र है साहसिकता का, संकल्प शक्ति का अभिवर्द्धन । चिन्तन में उत्कृष्टता और क्रियाकलाप में आदर्शवादिता का समावेश करने वाली वे सद्प्रेरणायें भी इसी क्षेत्र में विकसित होती हैं जो चरित्रनिष्ठा विकसित करने के लिए उत्तरदायी हैं ।

शिक्षा के आधार पर ज्ञान–सम्पदा तीक्षणता एवं क्रिया कुशलता बढ़ाने के प्रयत्न होते हैं । इसके साथ संकल्प शक्ति का महत्व भी समझा जाना चाहिए, वे उपाय भी अपनाये जाने चाहिए जिनके आधार पर व्यक्ति संकल्पवान बनता है और प्रगति के पथ पर अग्रसर होने में सफल होता है । मनोमय कोश को जागृत करने के उपाय जो भी हों, पर संकल्प शक्ति का उदय उसी क्षेत्र से होता है ।

प्रगति पथ पर अग्रसर होने के लिए, अभावों और असुविधाओं से लड़ने के लिए, प्रतिकूलताओं को अनुकूलता में बदलने के लिए न केवल साधन–सामग्री की अभिवृद्धि आवश्यक है वरन् यह भी अधिक अभीष्ट है कि मानवी संकल्पशक्ति को बढ़ाया जाय । मात्र साधनों की बहुलता से तो मनुष्य विलासी और आलसी ही बनता चला जायगा । इससे उसकी अकर्मण्यता, अशक्तता और अदक्षता ही बढ़ेगी । प्रगति के इतिहास में साधनों एवं परिस्थितियों का उतना योगदान नहीं है जितना कि विचारणा और आकांक्षा का । संकल्प

इन्हीं के समन्वय को कहते हैं । संकल्प की प्रखरता ही प्रगति का पथ–प्रशस्त करती है । जहाँ इसकी कमी होगी वहाँ प्रगति का रथचक्र उतना ही अवरुद्ध एवं दलदल में फँसा दिखाई पड़ेगा ।

नये वैज्ञानिक प्रतिपादनों के अनुसार प्रोटोप्लाज्मा के समतुल्य ही एक दूसरे जीवतत्व की सत्ता स्वीकार की गई है । वह है–'ईडोप्लाज्मा' । वंश परम्परा में अब इन दोनों का समान योगदान माना जाने लगा है । वंशानुक्रम की मात्र रासायनिक पदार्थों के आधार पर व्याख्या अधूरी और असमाधानकारक ही रही है । अभिरुचियाँ, आस्थाएँ, भावनाएँ, मान्यताएँ रसायनों के माध्यम से बनी रहने और परिष्कृत होते चलने का कोई तुक नहीं बैठता । 'ईडोप्लाज्मा' के संयोग से वह बात बनती है । यह दोनों तत्व एक नहीं हैं । उनकी सत्ता स्वतंत्र हैं । वे एक–दूसरे के पूरक भर हैं । यहाँ प्रोटोप्लाज्मा को पदार्थ सत्ता का और ईडोप्लाज्मा को चेतनता का प्रतिनिधित्व करते हुए पाया जाता है । गतिशीलता, समर्थता, आकांक्षा स्थिति के अनुरूप परिवर्तन, प्रजनन उत्साह, सुरक्षा के लिए संघर्ष, खाद्य पदार्थों को ऊर्जा के रूप में बदल लेना आदि कितने ही कार्य ऐसे हैं जिन्हें प्रोटोप्लाज्मा के हाथ से छीन लिया गया है और उसका श्रेय 'ईडोप्लाज्मा' को दिया गया है । परमाणु निर्धारित हलचलें करते रह सकते हैं, पर वे उत्साह एवं परिवर्तन की स्फुरणा अपने भीतर से प्रकट नहीं कर सकते । जीवाणु की यही मौलिक विशेषतायें हैं, जिनसे उसे पदार्थ वर्ग में, रासायनिक संगठन में गिन लेने मात्र से समाधान नहीं हो सकता है ।

पदार्थ में केवल अस्तित्व है । उसमें न तो जीवन है और न हलचल । वनस्पति में अस्तित्व के साथ–साथ जीवन भी है । प्राणियों में अस्तित्व, जीवन और अनुभूति तीनों हैं, किन्तु विवेचना बुद्धि और स्वातंत्र्य इच्छा की न्यूनता है । जीवन निर्वाह के परम्परागत अनुभवों और आवश्यकताओं के अनुरूप ही उनके चिन्तन की गाड़ी एक बनी बनाई पटरी पर लुढ़कती जाती है । मनुष्य की

चेतना सुविकसित स्तर पर पहुँची हुई इसलिए मानी जाती है कि उसकी संकल्प शक्ति–विवेचनात्मक क्षमता ने काफी प्रगति कर ली है। जबकि अन्य जीवधारी शारीरिक दृष्टि से अपेक्षाकृत अधिक बलिष्ठ होते हुए भी चेतना के क्षेत्र में पिछड़े हुए हैं। जड़ और चेतन की आणविक हलचलों में समानता हो सकती है, पर यह सम्भव नहीं दीखता कि पदार्थ कभी चेतन के समतुल्य प्रगति कर सकने में समर्थ हो सकेगा। क्या धातुएँ कभी पक्षियों की तरह आकाश में उड़ने, चहचहाने तथा अण्डे देने में समर्थ हो सकेंगी ? जीवन को रासायनिक सिद्ध करने के प्रयत्नों से काम चलता न देखकर कोल्बिन, हैमरीज, किचनर, अरर्हेनिस आदि ने अपने–अपने शब्दों में यह कहा है–'जीवन किसी अन्य लोक से भूलता, भटकता पृथ्वी पर पहुँचा है, पर वह है पदार्थ से भिन्न।' यों उसकी सत्ता पदार्थ के समन्वय से ही चिन्तनात्मक प्रयोजन पूरे कर सकती है।

जीवन का मूल स्वरूप उसकी चिन्तन स्फुरणा के साथ जुड़ा हुआ है। विचारणा और आकांक्षा के समन्वय से जो 'संकल्प' उठता है, उसी में प्रगति की समस्त संभावनाएँ सन्निहित हैं। विकासवादी प्रगति पर दृष्टिपात करने पर हमें इसी निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है। वे एक जैसी परिस्थितियों में रहने पर भी एक की प्रगति, दूसरे की यथास्थिति और तीसरे की अवगति देखकर इसी निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है कि यह संकल्पशक्ति की न्यूनाधिकता का ही प्रभाव है। साधनों के अभाव में भी लोग आगे बढ़ते हैं। सहयोग के बिना भी प्रगति करते हैं। इसके पीछे साधन भी बनता है और सहयोग भी जुटता है। मोटर दौड़ती है तो उसके पीछे धूलिकण और पत्ते भी उड़ते चले आते हैं। संकल्प ही मानव जीवन की सर्वोपरि शक्ति है। उसके सहारे सामान्य स्थिति से आगे बढ़कर असामान्य स्तर तक पहुँचा जा सकता है। अन्धकार में प्रकाश उत्पन्न करने की, निराशा में आशाजनक सम्भावनाएँ प्रस्तुत करने की क्षमता उसी में है। ऊँचे उठने और आगे बढ़ने के लिए साधन

जुटाने और सहयोग बनाने की आवश्यकता सभी मानते हैं, पर यह नहीं भुला दिया जाना चाहिए कि ये उपलब्धियाँ प्रचण्ड संकल्प-शक्ति उभारे बिना मिल नहीं सकतीं । किसी प्रकार संयोगवश मिल भी जायें तो स्थिर नहीं रह सकतीं । प्रगति का मूल मंत्र 'संकल्प' को मानकर चला जाय और सर्वप्रथम उसी के उपार्जन, अभिवर्धन का प्रयत्न किया जाय तो यह निश्चित रूप से व्यावहारिक एवं बुद्धिमत्तापूर्ण प्रयास माना जायगा ।

मनःसंस्थान ज्ञान, अनुभव एवं कौशल का ही नहीं प्रतिभा का भी क्षेत्र है । उत्कृष्टता के प्रति आस्था के बीज भी भूमि में जमते हैं । संकल्प शक्ति का उद्‌गम केन्द्र यही है । मनोमय कोश की साधना द्वारा यदि इन विभूतियों को जागृत एवं उपलब्ध किया जा सके तो उस दिशा में किया गया प्रयत्न सामान्य कार्यों की दौड़-धूप से कम नहीं अधिक ही लाभदायक और बुद्धिमत्ता पूर्ण सिद्ध होगा ।

मनःसंस्थान को सुविकसित करने के लिए स्वाध्याय, सत्संग एवं मनन-चिन्तन की आवश्यकता पड़ती है । इसके अतिरिक्त एक और भी कारगर उपाय हैं-मनोमय कोश की योग साधना । काम-काजी मस्तिष्क समेत मनःक्षेत्र की स्तरीय परतें मनोमय कोश की परिधि में आती हैं । उनसे अनेक प्रकार के लाभ लिए जाते हैं, उसी प्रकार तन के महादैत्य को यदि साधना द्वारा साध लिया जाय तो ऐसे लाभ मिल सकते हैं जिन्हें देवोपम उपलब्धियाँ प्राप्त करना, कहने में अत्युक्ति नहीं मानी जा सकती । मानसिक साधना ऐसे ही चमत्कार उत्पन्न करती है ।

व्यक्तित्व और मनःसंस्थान की स्थिति को परस्पर अति घनिष्ठ माना गया है । मनःस्तर ही व्यक्तित्व है । व्यक्तित्व को समुन्नत बनाने के लिए मनःसंस्थान की स्थिति ऊँची उठाने के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं । यह कार्य मात्र जानकारियाँ बढ़ाने या समझाने-बुझाने भर से पूरा नहीं हो जाता, इसके लिए ऐसे मनोवैज्ञानिक प्रयोग करने पड़ते हैं जो लोहे को गरम करके घन की चोटों से

उपयुक्त औजार बनाने जैसा कार्य कर सकें । इस प्रकार के प्रयोगों को मनोमय कोश की साधना कहा जा सकता है ।

शरीर की अनवरत गतिविधियों में जागृत मस्तिष्क का नगण्य जितना अधिकार होता है । संचालन अचेतन की अभ्यस्त प्रवृत्तियाँ ही करती हैं । माँस-पेशियों का आकुंचन-प्रकुंचन पलकों का निमेष-उन्मेष, फेंफड़ों का श्वाँस-प्रश्वाँस, आहार का ग्रहण और मल का विसर्जन, निद्रा, जागृति आदि असंख्य शारीरिक क्रिया-प्रक्रियाएँ अचेतन मन के नियंत्रण में ही चलती रहती हैं । हारमोन ग्रन्थियों से लेकर-प्राणों के अवधारण तक पर अचेतन का ही प्रभाव है । मनोविकारों के कारण शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य चौपट हो जाना और सद्भावनाओं के आधार पर व्यक्तित्व के सभी पक्षों का समुन्नत होते चलना इसी संस्थान की संरचना के कारण सम्भव होता रहता है । उत्थान और पतन के बीज इसी क्षेत्र में उगते हैं । व्यक्तित्व की सुविस्तृत जड़ें इसी भूमि में घुसी होती हैं ।

अचेतन को चित्त कहते हैं । वस्तुतः मस्तिष्क का प्रेरक केन्द्र यही है । यह गई-गुजरी स्थिति में पड़ा रहे तो संचेतन की बुद्धिमत्ता का उपयोग धूर्तता-दुष्टता जैसे निकृष्ट प्रयोजनों के अतिरिक्त किसी रचनात्मक कार्य में सम्भव न हो सकेगा और बुद्धिमान कहलाने वाला मनुष्य भी उज्ज्वल भविष्य का सृजन न कर सकेगा ।

मन और बुद्धि को विकसित करने के लिए स्कूली साहित्यक सम्पर्कजन्य, अनुभव सम्पादन करने जैसी अनेकों विधि-व्यवस्थाएँ प्रचलित हैं किन्तु चित्त की चिकित्सा करने में उन्हीं उपचारों को काम में लाया जाता है, जिन्हें मनोमय कोश की साधना कहते हैं । यों परामनोविज्ञान एवं मनोविज्ञान के अन्तर्गत भी अचेतन की क्षमता को समझने और अभीष्ट परिवर्तन करने के उपाय खोजे तथा सोचे जा रहे हैं किन्तु अनुभूत पद्धति मनःसाधना के अतिरिक्त और कारगर मार्ग अभी तक करतलगत नहीं हुआ है । इस तथ्य को

दूरदर्शी आत्म–विज्ञानियों ने चिरकाल पूर्व ही जान लिया था । उनने मानवी व्यक्तित्व का आधार केन्द्र मन को ही कहा है । जीवन की भली–बुरी स्थिति का उत्तरदायी उसी को माना है और इस बात पर बहुत बल दिया है कि समृद्धि के अन्यान्य आधारों पर जितना ध्यान दिया जाता है, उससे कम नहीं वरन् अधिक ही मानसिक परिष्कार पर दिया जाय । इस क्षेत्र की प्रगति के बिना भौतिक एवं आत्मिक प्रगति की आशा पूरी हो नहीं सकेगी । इन तत्वदर्शियों का अभिमत इस सन्दर्भ में इस प्रकार है–

चित्तमेव हि संसारो रागदिक्लेषदूषतम् ।
तदेव सर्विनिर्मुक्तं भवान्त इति कथ्यते ।।

–महोपनिषद् ४/६६

यह चित्त ही संसार है । चित्त रागादि दोषों से भर जाने पर क्लेष होते हैं । इन दूषणों से छुटकारे को ही मुक्ति कहते हैं ।

मन एव मनुष्याणां कारण बंध मोक्षयो,
बन्धाय विषयासक्त मुक्त्यै निर्विषायं स्मृतम् ।।

–योगवशिष्ठ

यह मन ही मनुष्यों को बन्धन में बाँधता है । इसके द्वारा मुक्ति भी मिलती है । विषयासक्त मन बन्धन का कारण है और उसकी निर्मलता से मुक्ति मिलती है ।

दृढ़भावनया चेतो यद्यथा भावयत्यलम् ।
तत्तफल तदाकारं तावत्मालं प्रपश्यति ।।

–योगवशिष्ठ ४/२१/५६–५७

हे राजन् ! यह मन दृढ़ भावना वाला होकर जैसी कल्पना करता है, उसको उसी आकार में उतने समय तक और उसी प्रकार का फल देने वाला अनुभव होता है ।

गंगाद्वारश्च केदारं सन्नि हत्मां तथैव च ।
एवानि सर्वतीर्थानि कृत्वाः पावैः प्रमुच्यते ।।

–व्यास स्मृति

जिसने अपने मन को जीत लिया उसके लिए गंगाद्वार, केदारनाथ आदि सभी तीर्थों का लाभ अपने पास ही मिल जाता है ।

मनो निर्मलसत्वात्म यद्भावयतियादृशम् ।
तत्तथाशु भवत्येव यथाऽवर्तो भवेत्यमः ।।

—योग वशिष्ठ ४/१७/४

मन यदि शुद्ध है तो जैसे जल भँवर का रूप धारण कर लेता है, वह जिस वस्तु की जैसी भावना करता है, वह अविलम्ब वैसी ही हो जाती है और दूसरे के मन की बात अपने मन में उतर आती है ।

यह मनोनिग्रह, अन्तःसन्तुलन, चित्त परिशोधन, समग्र विकास का आधारभूत उपाय है । मनोमय कोश की साधना का सत्परिणाम मनोजय है । इसे प्राप्त कर लेने वाला आत्म–विजय को विश्व विजय के लाभ से भी बढ़कर आनन्ददायक अनुभव करता है ।

विज्ञानमय कोश की अतीन्द्रिय सामर्थ्य

चेतना के चतुर्थ आयाम विज्ञानमय कोश की मूर्छना यदि दूर की जा सके तो सूक्ष्म जगत के साथ सम्बन्ध जुड़ सकता है और उस क्षेत्र में बिखरी पड़ी ऐसी विभूतियों का लाभ मिल सकता है जो सर्व साधारण के लिए सामान्यतः उपलब्ध नहीं हैं ।

कभी–कभी विज्ञानमय कोश की विशेषता अनायास ही उग आती है । निर्जन द्वीपों में भी फलदार वृक्ष पाये गये हैं । यह वहाँ की अपनी उपज नहीं, वरन् चिड़ियों की बीट में वे बीज उधर पहुँचे और उगे हैं । ऐसे अनायास सुयोग भी कई सामान्य व्यक्तियों को ऐसे लाभ देते हैं जिन्हें अद्भुत एवं अप्रत्याशित ही कहा जा सकता है । प्रयत्नपूर्वक यह क्षमता व्यवस्थित रूप से जगाई जा सकती है । इस संदर्भ में समय–समय पर उपलब्ध होती रहने वाली घटनाएँ यह बताती हैं कि दिव्य अनुभूतियों की कोई सत्ता–व्यवस्था इस संसार में निश्चित रूप से विद्यमान है ।

दिव्य दर्शन का लाभ जागृत अनुभूतियों की तरह स्वप्न में भी मिल सकता है। सजग मस्तिष्क जिस समय निद्रित स्थिति में होता है, उस समय 'अचेतन' को अधिक स्वतंत्रता रहती है, अस्तु उस स्थिति में वह और भी अधिक अच्छी तरह अपनी क्षमता का परिचय दे सकता है। ऐसी कितनी ही घटनाएँ हैं जिनमें कुछ लोगों को स्वप्न में दिव्य-दर्शन का लाभ मिला है।

गेटे ने अपनी आत्म-कथा में लिखा है कि उसे एक दिन अचानक वह अनुभूति हुई कि सिसली में भयंकर भूकम्प आया है। उस समय तो उसने इसे ऐसे ही भ्रम समझा, पर कुछ ही समय में जब समाचार पत्रों में सिसली के भयंकर भूकम्प का विवरण छपा तो उसने जाना कि वह अनुभूति एक यथार्थता थी। प्रसिद्ध लेखक जानेवन स्विफ्ट ने अपनी एक पुस्तक में-"मंगल ग्रह के दो चन्द्रमा होने और उसमें से एक की चाल दूसरे से दूनी होने" की बात लिखी है। उस समय वह बात गप्प समझी गई थी, पर उस लेख के १५० वर्ष बाद १८७७ में जब वाशिंगटन की नेवल आवजरवेटरी में शक्तिशाली दुर्बीन से उस कथन की सत्यता घोषित की गई तो लोगों ने उस दिव्य-दर्शन पर आश्चर्य प्रकट किया कि बिना किसी साधन के ऐसी जानकारी किस प्रकार सम्भव हो सकी।

जे. डब्ल्यू डने के ग्रन्थ "एन एक्सपेरिमेन्ट विद टाइम" में ऐसे अनेक विवरणों का संग्रह है जिनमें समय से पूर्व मिली जानकारियाँ समय आने पर बिल्कुल सही सिद्ध हुईं।

आइन्स्टीन से पूछा गया कि उन्होंने रिलेटिविटी के सिद्धान्त का सर्व प्रथम आभास किस प्रकार पाया ? तो उन्होंने उत्तर दिया-'इट हैपेण्ड' अर्थात् वह अनायास ही सामने आ खड़ा हुआ। रेडियम की खोज के सम्बन्ध में जब क्यूरी से पूछा गया तो उनका उत्तर भी इसी से मिलता-जुलता था। संसार में जो कुछ अद्भुत और असाधारण है उसका उदय भाव सम्वेदना के क्षेत्र से होता है। विज्ञान की उपलब्धियों के सूत्र संकेत भी उसी क्षेत्र से मिले हैं और

दार्शनिक क्षेत्र के अद्भुत विचारों का उदय भी वहीं से हुआ है अन्तःकरण को मस्ती से भर देने वाली और लोक–मानस को झकझोर देने वाली दिव्य संवेदनाओं का उद्गम, भाव–सम्वेदनाओं की गहरी तली से ही उभर कर ऊपर आता है ।

विज्ञान क्षेत्र में हुए अनेकानेक आविष्कारों का आरंभ कहाँ से हुआ, इस प्रश्न का सर्वत्र एक ही उत्तर मिलेगा कि–'वह संभावना अनायास ही सूझ पड़ी ।' मात्र सूझ ही नहीं पड़ी, वरन् अन्तःकरण में किसी ने यह विश्वास भी दिलाया कि यह आभास भ्रम जंजाल नहीं, वरन् सर्वथा सत्य है । इस आश्वासन भरे आभास के सहारे ही उन लोगों ने अपनी खोजें अधिक गम्भीरता अधिक तत्परता और अधिक तन्मयता के साथ प्रारम्भ की, फलतः उनका पथ प्रशस्त होता चला गया और थोड़े से प्रयत्न ने आश्चर्यजनक सफलता उनके सामने लाकर खड़ी कर दी । प्रायः सभी महत्वपूर्ण आविष्कारों का आरम्भ इसी प्रकार होता रहा है ।

वैज्ञानिक केहर ने ६९ गणित सम्बन्धी आविष्कारों में से ५७ की जानकारी स्वप्न में प्राप्त की, जेम्स वाट ने बन्दूक की गोली का आविष्कार स्वप्न में किया था, प्रो. लेम्बरटन (पेन्सलबेनिया) ने एक समीकरण का हल स्वप्न अतीन्द्रिय लोक में एक दीवाल पर लिखा देखा था । कोलरिज, गेटे, स्टीवेन्सन, ब्लैके आदि कवियों की रचनायें उनके स्वप्नों की प्रेरणा थीं । सिलाई की मशीन, कार्बन की एटामिक रचना क्रमशः एलिएस, होवे तथा वैज्ञानिक डॉ. मूले को स्वप्न में ही हुई थी । नील–बोहर ने परमाणु की शोध एक दिव्य स्वप्न के आधार पर ही की थी । इसी तरह अनेक अतीन्द्रिय शक्ति से सम्पन्न खोज हुई हैं । जिनके पास भविष्य ज्ञान, दूसरे के मन की बात जान लेने की क्षमतायें रही हैं, इनका कारण और आधार उन्हें स्वयं भी पता नहीं था । इन क्षमता सम्पन्न व्यक्तियों तथा घटनाओं से सिद्ध होता है कि मस्तिष्क के सामान्य ज्ञान और कौशल से परे भी कोई सूक्ष्म जगत है जिसकी शक्ति व

क्षमताएँ इतनी रहस्यमय हैं कि उनकी सामान्य मनुष्य कल्पना भी नहीं कर सकता । विज्ञानमय कोश उन्हीं रहस्यों–सिद्धियों को अभिव्यक्त करता है । उनसे पूछने और विचारने पर वह क्षेत्र अन्तःकरण या अन्तरात्मा ही समझ में आता है । मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार–आस्था, उमंग और सरसता इसी केन्द्र बिन्दु से प्रादुर्भूत होते हैं । इनका पदार्थ से भिन्न स्वरूप नहीं हैं । इस भूल को वैज्ञानिकों ने भी स्वीकार कर लिया है ।

इच्छा शक्ति, ज्ञान शक्ति और क्रिया शक्ति चेतना त्रिवेणी के ही त्रिविध प्रवाह हैं । इनका उद्‌गम स्रोत अन्तरात्मा है । वहाँ की उमगें ही इच्छा को दिशा देती हैं, उसका संकेत पाकर मस्तिष्कीय ताना–बाना बुना जाता है । वहाँ के निर्देशों का पालन ननुनच किये बिना शरीर स्वामिभक्त सेवक की तरह करता रहता है । इन तथ्यों पर विचार करने से स्पष्ट हो जाता है कि आत्मा और संसार का संपर्क सूत्र इसी केन्द्र से जुड़ता है । जीवन का स्वरूप यहीं बनता है और उसका प्रवाह यहीं से निरस्त होता है । मनोविज्ञान की भाषा में इसे 'सुपरचेतन' कह सकते हैं । दार्शनिकों ने इसे अति मानस माना है । यों अरविन्द, नीत्से आदि ने अतिमानस की व्याख्यायें परस्पर विरोधी की हैं, तो भी उनका तात्पर्य चेतना के उस स्तर से है जिसे व्यक्तित्व का उद्‌गम अथवा मर्मस्थल कहा जा सके । प्रत्येक सूक्ष्मदर्शी व्यक्ति के अस्तित्व में मूल–भूत सत्ता अन्तरात्मा की ही काम करती पाई गई है और उसी की सर्वोपरि गरिमा स्वीकार की है ।

साधना विज्ञान में इसी अन्तरात्मा को 'विज्ञानमय कोश' कहा है । उसके परिष्कृत प्रयासों को योगाभ्यास में सर्वोच्च स्थान प्राप्त है । आस्थाओं का परिमार्जन होने से जीवन के बहिरंग स्वरूप में कायाकल्प होते देर नहीं लगती । वाल्मीकि, अंगुलिमाल, अम्बपाली, अजामिल, सूर, तुलसी आदि के जीवन परिवर्तन को एक प्रकार से आध्यात्मिक कायाकल्प ही कह सकते हैं । सामान्य स्थिति के मनुष्य असामान्य स्तर के महामानव बने हैं । इसमें भी आस्थाओं का

उन्नयन ही प्रधान भूमिका निवाहता दृष्टिगोचर होता है । कबीर, दादू, रैदास, रामदास, रामकृष्ण, विवेकानन्द, शंकराचार्य, दयानन्द आदि महामानव परिस्थितियों के हिसाब से कुछ अच्छी स्थिति में नहीं जन्मे थे । लिंकन, वाशिंगटन आदि की प्रगति में उनकी परिस्थितियों की ही नहीं मनःस्थिति की ही प्रधान भूमिका रही है । ध्रुव, प्रहलाद, बुद्ध, महावीर आदि जन्मे तो राज परिवारों में थे, पर व्यक्तित्व को उच्चस्तरीय बनाने का कोई वातावरण उपलब्ध नहीं था । नारद आदि की प्रेरणा से अथवा स्वयं की संवेदनाओं से प्रभावित होकर उनने अपनी आस्थाओं में परिवर्तन किया और उतने ऊँचे जा पहुँचे जितने की सामान्यतया कल्पना भी नहीं की जा सकती थी । यह अन्तःकरण के परिवर्तन एवं परिष्कार का ही चमत्कार है । यह विज्ञानमय कोश किस प्रकार परिष्कृत होता है, इसके कितने ही मार्ग एवं उपाय हो सकते हैं । अनायास संयोग, दैवी अनुग्रह आदि अन्य कारण भी इस क्षेत्र के विकास–परिष्कार के कारण हो सकते हैं, पर प्रयत्न पुरुषार्थ पर क्रमिक गति से अन्तःकरण का स्तर ऊँचा उठाने की प्रक्रिया विज्ञानमय कोश की साधना ही मानी गई है ।

विज्ञानमय कोश का यह बहिरंग जीवन पक्ष हुआ । उसकी एक दिशाधारा सूक्ष्म जगत की ओर भी प्रवाहित होती है । हिमालय की दो प्रधान धारायें गंगा और यमुना के रूप में प्रवाहित होती हैं । अन्तःकरण को हिमालय माना जाय तो उसकी एक प्रक्रिया सामान्य मनुष्य को महानात्मा, देवात्मा, परमात्मा स्तर तक ऊँचा उठा ले जाने वाली कही जा सकती है । दूसरी है जो सूक्ष्म जगत के साथ जीव–सत्ता का सम्पर्क जोड़ती है । दोनों के बीच महत्त्वपूर्ण आदान–प्रदान सम्भव करती है ।

हम जिस दुनियाँ के सम्पर्क में हैं, वह स्थूल जगत है । यह इन्द्रियगम्य है । इसके भीतर, प्रकृति की वह सत्ता है जो पदार्थ की तरह प्रत्यक्ष नहीं, शक्ति के रूप में विद्यमान है और बुद्धिगम्य है । इस स्थूल जगत का परिचय इन्द्रियों से, बुद्धि से, यंत्र–उपकरणों से

मिलता है । पदार्थ और प्रकृति शक्तियों का लाभ उठा सकना भी उपरोक्त स्थूल साधनों से सम्भव हो जाता है । इससे आगे सूक्ष्म जगत का अस्तित्व होता है, जो इन्द्रियगम्य न होने से अतीन्द्रिय या इन्द्रियातीत कहा जाता है । प्रयोगशाला में उसे प्रमाणित नहीं किया जा सकता और बुद्धि ही उनका आधार एवं कारण समझ सकने में समर्थ होती है । इतने पर भी उस सूक्ष्म जगत का आधार अपने स्थान पर चट्टान की तरह अडिग है । उसका अस्तित्व स्वीकार करने के अतिरिक्त कोई चारा नहीं है ।

सूक्ष्म जगत की एक भौतिकवादी सत्ता ही ऐसी सामने आ खड़ी हुई है जो आध्यात्मवादियों के द्वारा प्रतिपादित सूक्ष्म जगत से भी विचित्र और सशक्त है । यह मान्यता प्रति पदार्थ की, प्रति विश्व की है । एण्टीमैटर–एण्टीयूनिवर्स के तथ्य इस प्रकार सामने आये हैं कि उनके आधार पर अपने साथ सटे हुए एक विलक्षण विश्व का अस्तित्व जुड़ा देख कर हतप्रभ रह जाना पड़ता है ।

तन्त्र विज्ञान में 'छाया पुरुष' साधना का उल्लेख है । कहा गया है कि मनुष्य की सूक्ष्म सत्ता का प्रतिनिधित्व करने वाला एक जीवित प्रेत होता है और वह साथ ही रहता है । इसकी देवता या भूत–प्रेत जैसी साधना करके उसे आज्ञानुवर्ती बनाया जा सकता है । स्थूल शरीर स्थूल कार्य करता है और सूक्ष्म शरीर सूक्ष्म स्तर के कार्य करने की क्षमता रखता है । छाया पुरुष की सिद्धि में अपना ही एक और शरीर अपने हाथ में आ जाता है और इन दोनों शरीरों से दो प्रकार के काम एक साथ करना सम्भव हो जाता है । इस प्रतिपादन में एक 'प्रति मनुष्य का–छाया पुरुष का अस्तित्व और क्रियाकलाप बताया गया है । देखा जाता है कि प्रकाश में अपनी ही एक और छाया उत्पन्न हो जाती है और वह साथ–साथ रहती है । सूक्ष्म शरीरधारी छाया पुरुष की स्थिति सजीव छाया जैसी समझी जा सकती है । यह नामकरण इसी आधार पर किया गया है ।

मूर्धन्य वैज्ञानिकों के सामने एण्टी–एटम, एण्टी–मैटर, एण्टी

यूनिवर्स का अस्तित्व एक चुनौती के रूप में खड़ा है । उसे अस्वीकार करते नहीं बनता । यदि उस अस्तित्व के तथ्य स्पष्ट हो जाते हैं और उस प्रति विश्व की गतिविधियों से मनुष्य का सम्बन्ध जुड़ जाता है तो निश्चित रूप से एक जादुई दैत्य युग में हम सब जा खड़े होंगे । प्रति परमाणु की शक्ति अपने जाने माने परमाणु की तुलना में अत्यधिक है । अपने परिचित संसार की तुलना में अपरिचित 'एण्टी यूनिवर्स' की सम्पदा–क्षमता एवं विशालता बहुत बड़ी है । उसके सन्तुलन में अन्तर पड़ जाय तो देखते–देखते 'एण्टी यूनिवर्स' का महादैत्य अपने प्रत्यक्ष संसार को निगल कर हजम कर सकता है और हिरण्याक्ष की उस पौराणिक कथा का एक प्रत्यक्ष दृश्य उपस्थित हो सकता है । जिसमें वह महादैत्य, उस पृथ्वी को बगल में दबा कर पाताल लोक भाग गया था ।

छाया पुरुष और 'प्रतिविश्व' की चर्चा यहाँ यह समझने के लिए की गई है कि सूक्ष्म जगत के समतुल्य अपने ही इर्द–गिर्द बिखरे हुए एक सूक्ष्म जगत के अस्तित्व को समझने में सुविधा हो । इन्द्रियों की पकड़ में न आने वाली यह दुनियाँ इतनी विलक्षण है कि उसकी हलचलों का दृश्य संसार पर भारी प्रभाव पड़ता है । पदार्थों, प्राणियों और परिस्थितियों पर उस सूक्ष्म जगत की हलचलें आश्चर्यजनक प्रतिक्रिया उत्पन्न करती हैं । प्रयत्न और पुरुषार्थ के महत्व से इन्कार नहीं किया जा सकता, पर यह भी एक तथ्य है कि अदृश्य जगत का अतिघनिष्ठ और अतिप्रभावी सम्पर्क दृश्य जगत से है ।

जीवधारी की चेतना ब्रह्माण्ड व्यापी महाचेतना का एक अंश है । अंश और अंशी के गुण, धर्म समान होते हैं । अन्तर विस्तार के अनुरूप क्षमता का होता है । हम सब चेतना के महासमुद्र में छोड़ी बड़ी मछलियों की तरह जीवनयापन करते हैं । महाप्राण–ब्रह्म सत्ता में ही अल्पप्राण जीव अनुप्राणित होता है ।

जीव और ब्रह्म के मध्य आदान–प्रदान के सुदृढ़ सूत्र विद्यमान हैं । उनमें अवरोध आत्मा पर चढ़े हुए कषाय–कल्मषों के कारण

उत्पन्न होता है । इन्हें हटाया जा सके तो ब्रह्माण्डीय चेतना और जीव चेतना के मध्य महत्वपूर्ण आदान–प्रदान चल पड़ते हैं । भौतिक अंश का भार बढ़ जाने से जीव प्रकृति पूरक हो जाता है । उसकी जीव–चेतना भौतिक आकांक्षाओं और उपलब्धियों में ही सीमित हो जाती हैं । फलतः वह स्वल्प, सीमित और दरिद्र दिखाई पड़ता है । यदि जीव सत्ता को निर्मल रखा जा सके तो उसकी सूक्ष्मता ब्रह्म–तत्व से, सूक्ष्म जगत से अपना घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित कर सकती हं । यह आदान–प्रदान जिसके लिए भी सम्भव हुआ है वह देवोपम स्तर की स्थिति बना सका है । ऐसे लोगों को स्थूल जगत की अपेक्षा सूक्ष्म जगत से अधिक महत्वपूर्ण अनुदान अधिक मात्रा में मिलने लगते हैं । वह सम्पदा व्यक्ति को सच्चे अर्थों में समुन्नत बनाती है । इस उपलब्धि के सहारे वह अपने सम्पर्क क्षेत्र के असंख्यों का तथा समूचे संसार का महत्वपूर्ण हित साधन कर सकता है । यह विज्ञानमय कोश के परिष्कार से ही संभव है ।

विज्ञानमय कोश की प्रसुप्त स्थिति को हटाकर उसमें जागृति उत्पन्न कर देने पर मनुष्य सामान्य न रहकर असामान्य बन जाता है । उसे अनेक प्रकार की असाधारण विशेषताएँ प्राप्त कर सकने का अवसर मिलता है । सूक्ष्म जगत का उपयोग कर सकने की सफलताओं को सिद्धियाँ कहा गया है । साधना से सिद्धि की प्रचलित उक्ति को विज्ञानमय कोश की सफलता कहा जाय तो कुछ अनुचित न होगा ।

सिद्धियों का वर्णन साधना शास्त्र में स्थान–स्थान पर मिल सकता है । इस प्रकार की सफलता प्राप्त करने के लिए विज्ञानमय कोश के जागरण का प्रयत्न करना पड़ता है । इस संदर्भ में कुछ संकेत इस प्रकार मिलते हैं–

> **यथा वा चित्तासामर्थ्य जायते योगिनो ध्रुवम् ।**
> **दूरश्रुतिर्दूरदृष्टिः अणाद्दूरागमस्तथा ।।**
> **वाक्सिद्धिः कामरूपत्वमदृश्यकरणी तथा ।।**
>
> –योग तत्वोपनिषद्

जैसे–जैसे चित्त की सामर्थ्य बढ़ती है, वैसे ही वैसे दूर श्रवण, दूरदर्शन, वाक्–सिद्धि, कामना पूर्ति आदि अनेकों दिव्य सिद्धियाँ मिलती चली जाती हैं ।

आसनेन रुजो हन्ति प्राणायामेन पातकम् ।
विकारं मानसं योगी प्रत्याहारेण सर्वदा ।।
धारणाभिर्मनोधैर्यं ध्यानादैश्वर्यमुत्तमम् ।
समाधौ मोक्षमाप्नोति त्यक्तकर्मशुभाशुभः ।।

–वशिष्ठ संहिता

आसन से रोग, प्राणायाम से पातक, प्रत्याहार से मनोविकार दूर होते हैं और धारणा से धैर्य, ध्यान से ऐश्वर्य और समाधि से मोक्ष प्राप्त होता है, कर्म–बन्धन कटते हैं ।

करामलकवद्विश्वं तेन योगी प्रपश्यति ।
दूरतो दर्शनं दूरश्रवणं चापि जायते ।।
भूत भव्यं भविष्यं च वेत्ति सर्व सकारणम् ।
ध्यानमात्रेण सर्वेषां भूतानां च मनोगतम् ।।
यन्तर्लीनमना योगी जगत्सर्व प्रपश्यति ।
सर्वगुप्तपदार्थानां प्रत्यक्षत्व च जायते ।।

–योग रसायन

योगी को अदृश्य जगत दृश्यवत् दीखता है । उसे दूरदर्शन, दूरश्रवण आदि की सिद्धियाँ उपलब्ध रहती हैं । ध्यान मात्र से योगी भूत, भविष्य, वर्तमान तथा प्राणियों के मनोगत भाव जान लेता है ।

अन्तर्लीन मन द्वारा योगी विश्व के गुप्त पदार्थों एवं रहस्यों को प्रत्यक्षवत् देख और जान लेता है । उस अवस्था तक पहुँचना विज्ञानमय कोश की साधना से ही संभव होता है ।

आनन्दमय कोश का अमृत कलश

आनन्दमय कोश जीवात्मा पर चढ़ा अन्तिम आवरण है । अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानभय के उपरान्त इसी एक की साधना करनी शेष रह जाती है । इस आवरण के हटते ही आत्मा को परमात्मा रूप में परिष्कृत होने का अवसर मिल जाता है । तब उसकी स्थिति वैसी ही हो जाती है जैसी कि वेदान्त में 'अयमात्मा ब्रह्म' 'तत्व मसि' 'सोहमस्मि, सच्चिदानन्दो हम्' शिवोहम् आदि उद्घोषों के अन्तर्गत प्रतिपादित की गई है ।

शिर विवर को दो दिव्य सत्ताओं का निवास दुर्ग माना गया है । उसका चेतन–अचेतन, मनःसंस्थान मनोमय कोश कहलाता है । इसका सूत्र संचालन भ्रू मध्य भाग में अवस्थित आज्ञाचक्र से होता है । दूसरा चेतना का सर्वोच्च आनन्दमय कोश है । मस्तिष्क में जानकारियों और आदतों का समन्वय है । इसलिए उसे इन्द्रिय वर्ग में गिना जाता है । भौतिक तत्वों से घिरा माना जाता है । तात्विक विवेचना में मन को ग्यारहवीं इन्द्रिय माना गया है । इन्द्रियाँ अपने–अपने छोटे क्षेत्रों को संभालती हैं । मन उन पर मानीटर जैसा अनुशासन बनाये रखने में सहायता करता है । यों उसकी भी गणना छात्र वर्ग में ही है । मनोमय कोश की साधना से इसी मस्तिष्कीय क्षमता की मनोविज्ञान और परा मनोविज्ञान क्षमताओं की चर्चा–विवेचना होती है । आनन्दमय कोश की स्थिति भिन्न है । उसमें जीव और ब्रह्म के मिलने का सम्पर्क साधने वाले अति उच्चस्तरीय सूत्र हैं । शरीर क्षेत्र में ईश्वर का स्थान कहाँ है ? इसका उत्तर साधारणतया समूची सत्ता में संव्याप्त कहा जा सकता है, पर यदि उसका अन्य कोशों जैसा प्रवेश द्वार या केन्द्र संस्थान पूछना हो तो उसे ब्रह्मरंध्र में अवस्थित सहस्रार चक्र कहना पड़ेगा ।

ब्रह्मरंध्र मस्तिष्क का मध्य भाग है । परमाणु के मध्य भाग को

'नाभिक' या 'न्यूक्लियस' कहते हैं । अणु सत्ता का उद्‌गम केन्द्र वही है । शेष भाग में तो उनका सहायक संरक्षक सरंजाम भरा पड़ा है । जीवाणु से लेकर ग्रह–नक्षत्र तक में यह न्यूक्लियस ही सार भाग और शक्ति स्रोत होता है । मस्तिष्कीय राष्ट्र की राजधानी इस मध्य केन्द्र ब्रह्मरंध्र में है । ब्रह्मसत्ता का अवतरण इसी स्थान पर होता है । वायुयान हवाई अड्डे पर ही उतरते हैं ।

मनःसंस्थान का सारा नियन्त्रण संचालन मस्तिष्कीय विद्युत के माध्यम से होता है । यह विद्युत संकेत नाड़ी संस्थान द्वारा विभिन्न अंगों तक भेजे जाते हैं । यह विलग–विलग केन्द्र भी परस्पर जुड़े हुए हैं । उनमें भी परस्पर आदान–प्रदान होता है । जैसे आँख के सामने स्वादिष्ट वस्तु आई तो आँख का नियंत्रण केन्द्र तुरन्त जीभ के केन्द्र को सूचना दे देता है और तब जीभ लार प्रवाहित करने लगती है ।

मस्तिष्कीय संचार सूत्रों का भी एक मध्य केन्द्र है । वहीं से अगणित प्रवाह उठने और उनके द्वारा अनेक विद्युत उन्मेष सक्रिय होते देखे जाते हैं । उन्हीं के द्वारा विभिन्न महत्वपूर्ण मस्तिष्कीय केन्द्रों को उत्तेजना मिलती है । सक्रियता इसी उत्तेजना से उत्पन्न होती है ।

यदि मस्तिष्क की इस प्रक्रिया को सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो मस्तिष्क के मध्य भाग से सहस्रों विद्युत स्पन्दन सतत् प्रस्फुटित होते दीख सकते हैं । इसी को अलंकारिक रूप से सहस्र धाराओं वाले चक्र अथवा सहस्र पंखुड़ियों वाले कमल के नाम से सम्बोधित किया जाता है । उस तक पहुँच मानसिक उपचारों की नहीं है किन्तु योग विद्या के अन्तर्गत ध्यान धारणा द्वारा उसे अभीष्ट दिशा में मोड़ा, सुधारा एवं अभ्यस्त किया जा सकता है । इस प्रकार व्यक्तित्व के सर्वोच्च शक्ति केन्द्र पर अधिकार प्राप्त करके मनुष्य अभीष्ट आत्म निर्माण में सफल हो सकता है । कहना न होगा कि यह आत्म–विजय अपने लिए तो विश्व विजय के समान ही लाभदायक सिद्ध हो सकती है ।

ब्रह्मरंध्र की रासायनिक संरचना को देखते हुए उसे कमल पुष्प की आकृति से मिलता-जुलता देखा जाता है । शरीर शास्त्र के अनुसार भी उस स्थान पर एक अणु गुच्छक पाया जाता है । सूक्ष्म दृष्टि से-सूक्ष्म शरीर में उसकी स्थिति और भी अधिक स्पष्ट होती है । वहाँ कमल पुष्प की आकृति में प्रायः हजार या हजारों पंखुरियाँ बिखरी दीखती हैं, साथ ही प्रकाश-ज्योति का आभास भी होता है । इस स्थान में उठने वाली भाव संवेदना को कमल पुष्प और ज्ञान प्रखरता को प्रकाश-ज्योति नाम दिया गया है । इस स्थिति का चित्रण कमल पुष्प के दीपक में जलने वाली प्रकाश-ज्योति के रूप में किया गया है । इस ब्राह्मी स्थिति की प्रतीक प्रतिमा अखण्ड-ज्योति के रूप में की गई है । निरन्तर जलने वाला घृत दीप इस ब्रह्मरंध्र, ब्रह्मलोक का प्रतीक प्रतिनिधि मानकर पूजा-उपचार में प्रतिष्ठापित किया जाता है ।

देव सम्प्रदायों ने इस केन्द्र का चित्रण अपने-अपने ढंग से किया है । विष्णु उपासकों की ब्रह्मलोक व्याख्या में विस्तृत क्षीरसागर-सहस्र फन वाले शेषनाग की शैया उस पर भगवान विष्णु का शयन का वर्णन है । क्षीरसागर मस्तिष्क गह्वर में विद्यमान मज्जा पदार्थ-ग्रेमेटर है । सहस्रार कमल सहस्रार चक्र है । उस पर अवस्थित ब्रह्म चेतना भगवान विष्णु है । साधारणतया यह सारा क्षेत्र प्रसुप्त स्थिति में निष्क्रिय पड़ा रहता है, इसलिए विष्णु भगवान सोते हुए दर्शाये गये हैं । शिव भक्तों ने इसी ब्रह्मरंध्र को शिवलोक कहा है । मान सरोवर मध्य में कैलाश, उस पर समाधिस्थ शिव-गले में महा सर्प यह चित्रण प्रकारान्तर से विष्णु व्याख्या के समतुल्य ही है । ग्रेमैटर, मानसरोवर, सहस्रार-कैलाश । प्रकाश ज्योति शिव । सिर पर चन्द्र-प्रकाश किरणें । गले में सर्प-शेषनागवत् । शिव के मस्तिष्क में गंगा का उद्गम-ब्रह्मज्ञान का अवतरण । विष्णु के चरणों में से गंगा निकलती हैं शिव के मस्तक में से भी । दोनों ही स्थिति में उस केन्द्र को दिव्य ज्ञान का गोमुख कहा जा सकता है ।

सहस्रार की स्थिति का वर्णन अनेक ग्रन्थों में हुआ है । उनका स्वरूप और विवरण प्रायः एक–दूसरे से मिलता–जुलता ही है । उल्लेख इस प्रकार मिलते हैं–

स्व मूर्धनि सहस्रार पंकजा सीन मव्ययम् ।
शुद्ध स्फटिक संकाशं शरच्चन्द्र निभाननम् ।।

–शक्ति बीज

अपनी मूर्धा में सहस्रार कमल के मध्य शुद्ध स्फटिकवत् शरतचंद्र जैसे प्रकाश का ध्यान करना चाहिए ।

ब्रह्मज्योतिर्वसुधा मा ब्रह्मस्थानीय उच्यते ।
ततो यः पावको नाम्ना यः सद्भिर्योग उच्यते ।।

–मत्स्य पुराण

ब्रह्म–ज्योति अग्नि ब्रह्मरंध्र स्थान में निवास करती है । यह साधकों को पवित्र करने वाली है । यही योगाग्नि है ।

सहस्र दल पंकजां सकल शीतरस्मि प्रभां ।
वराभय कराम्बुजां बितुल गन्ध पुष्पाम्वराम् ।।

–विश्वामित्र कल्प

गायत्री महाशक्ति का चित्रण सहस्र दल–कमल पर विराजमान हाथ में कमल, गले में कमल माला धारण किए हुए रूप का ध्यान करने का विश्वामित्र कल्प में निर्देश है ।

अत ऊर्ध्व दिव्य रूपं सहस्रारं सरोरुहम् ।
ब्रह्माण्डारव्यस्य देहस्य बाह्ये तिष्ठति मुक्तिदम् ।
कैलाशो नाम तस्यैव महेशो यत्र तिष्ठति ।

–शिव संहिता ५/१८६/१८७

(तालू के) ऊपरी भाग रूप सरोवर में दिव्य स्वरूप वाला सहस्रार है, यह इस ब्रह्माण्ड रूपी देह के बाहर विद्यमान रहता है । इसी सहस्रार स्थान का नाम कैलाश है । महेश यहीं निवास करते हैं ।

शिरः कपाल विवरे ध्यायेद् दुग्ध महोदधिम् ।
तत्रस्थित्वा सहस्रारे पद्मे चन्द्र विचित्त येत् ।।

—शिव संहिता

शिर के कपाल बिवर में क्षीर सागर भरा हुआ है । उस पर सहस्रार कमल चन्द्रमा की तरह प्रकाशवान होने का ध्यान करें ।

सहस्रार साधना का प्रतिफल उस आत्म—ज्ञान की—ब्रह्मबोध की उपलब्धि बताया है जिसे प्राप्त करने के उपरान्त समस्त सांसारिक क्लेशों से छुटकारा मिलता है और अन्तःक्षेत्र के भव—बन्धनों से मुक्ति मिलती है । मोक्ष की प्राप्ति, ब्रह्म प्राप्ति, दिव्य समाधि, जीवन—मुक्ति जैसी परम सिद्धि इस सहस्रार महाकेन्द्र से ही उपलब्ध होती है । यथा—

स्थाने परं हंस निवास भूते कैलाशनाम्नी ह निविष्टचेतः ।
योगी हतव्याधिराधः कृताधिर्वायुश्चिर जीवति मृत्युमुक्तः ।

—शिव संहिता ५/१८९

अर्थ—इस कैलाश नामक स्थान में परमहंस का निवास है जो साधक सहस्र दल कमल में मन को स्थिर करता है, उसकी सकल व्याधि नाश हो जाती है और वह मृत्यु से छूटकर अमर हो जाता है ।

आनन्दमय कोश का तात्पर्य है—आनन्द का भण्डार । सहस्रार कमल का केन्द्र संस्थान है । इसे अमृत कलश भी कहते हैं । यह जागृत स्थिति में हो तो उससे अपने को आनन्दित रखने वाला और दूसरों में पुलकन उत्पन्न करने वाला प्रवाह निसृत होता रहेगा । यह ज्ञानमय है । आत्म—बोध एवं तत्व—बोध की ज्ञान धारा जीवन के हर क्षेत्र का सिंचन करती और उसे हरीतिमा, शोभा, सुषमा युक्त बनाती है । इस आनन्द को, आत्म—विस्तार को सरसता के रूप में भी अनुभव किया जाता है । परमेश्वर की विवेचना 'रसो वै सः' के रूप में की गई है । यह 'रस' इन्द्रिय उत्तेजना से मिलने वाले उन्माद जैसा नहीं, वरन् 'प्रेम' जैसा सौम्य एवं सात्विक है । इसे भक्ति—रस भी कहा जा सकता है । व्यवहार में इसे आत्म—भाव का

विस्तार कह सकते हैं । दया, करुणा, ममता, उदारता, सेवा आदि सुकुमार संवेदनायें इसी आत्म–विस्तार वृत्ति के सहारे उठती, उमंगतीं और पनपती हैं । इस सरसता को अध्यात्म शास्त्रों में 'सोम–रस' के नाम से पुकारा गया है । देवताओं का अमृत पान यही है । इसका रसास्वादन ब्रह्मानन्द कहलाता है । इसी विशेषता के कारण परमात्मा को 'सच्चिदानन्द' कहा जाता है ।

सहस्रार कमल में परिपूर्ण अमृत कलश से उपलब्ध होने वाले सुधा–रस, सोमरस की चर्चा इस प्रकार मिलती है–

तन्निर्गतामृतरसै रभिषिच्य गात्र–
मार्गेण तेन विलयं पुनरण्य वाप्ता ।
येषां हृदि स्फुरति जातु न ते भेवयु–
र्हमातमहेश्वर कुटुम्बिनि गर्भभाजः ॥

–तन्त्र सार

हे माता ! तुम सहस्र दल कमल से निकलते हुए सुधारस से देह को अभिषिक्त करती हुई सुषुम्ना के मार्ग में जाकर लीन हो जाती हो । जिस मनुष्य के हृदय पद्म में तुम्हारा उदय नहीं होता, वह मनुष्य बारम्बार गर्भ धारण का दुःख उठाता है ।

व्योम पंकजानिष्यन्द सुधापानरतो भवेत् ।
मद्यपानमिदं मोक्तमितरे मद्यपायिनः ॥

ब्रह्मरंध्र में स्थित सहस्रार कमल से रस टपकता है, वह मद्य–पान है । नशा पीने वाले तो शराबी मात्र हैं ।

नूनव्य से नवीय से सूक्ताय साधया पथः ।
प्रत्नवद्रोचया रुचः ॥
पववान महिश्रवो नामश्वं रासि वीरवत् ।
सना मेधां सना स्वः ॥

–ऋ. ९/९/८–९

यह सोम जिसके अन्तःकरण में प्रतिष्ठित होता है, उसके

आत्म-विकास और सुख-समुन्नति की अलौकिक प्रेरणायें अन्तःकरण से स्वतः स्फुटित होती हैं ।

शिर एवास्य हविर्धानः वैष्णवं देवतयाथ यदस्मिन् सोमो भवति हविर्वै देवानां सोमस्तस्माद्धविर्धानं नाम ।

—शतपथ ३/५/३/२

यह मस्तिष्क ही देवलोक है । जहाँ इन्द्रिय संचालक केन्द्रों के रूप में देवता विराजते हैं । यहीं सोम को हवि दी जाती है । यहीं देवता सोम पान करते हैं ।

स्पष्ट है कि यह सारे संकेत सहस्रार चक्र स्थित अमृत कलश की ओर ही हैं । वहाँ से निकलने वाली ज्ञान गंगा जीवात्मा को पवित्र और परितृप्त करती है । आत्मिक आनन्द इसी स्थिति में मिलता है । आनन्दमय कोश की सार्थकता इसी अमृत की अधिकाधिक मात्रा में वर्षा कर सकने में है ।

सहस्रार चक्र की साधना के लिए दो मार्ग हैं—एक ब्रह्मरंध्र में प्रकाश ज्योति का ध्यान, दूसरा खेचरी मुद्रा द्वारा तालु दंश से जिह्वा मूल को लगा कर इस अमृत रस का पान करना । खेचरी मुद्रा के स्वरूप, सन्दर्भ एवं प्रतिफल के सम्बन्ध में मिलने वाले उल्लेखों में से कुछ इस प्रकार हैं—

कपालकुहरे जिह्वा प्रविष्टा विपरीतगा ।
भ्रू वीरन्तर्गता दृष्टिर्मुद्रा भवति खेचरी ।।
न रोगो मरणं तस्य न निद्रा न क्षुधा तृषा ।
न च मूर्छा भवेत्तस्य यो मुद्रां वेत्ति खेचरीम् ।।
पीड्यते न च रागेण लिप्यते न स कर्मभिः ।
बध्यते न च केनापि यो मुद्रां वेत्ति खेचरीम् ।।

—योग चूड़ामण्युपनिषद्

जिह्वा के उलटकर कपाल कुहर में प्रविष्ट कराने तथा भ्रूमध्य में दृष्टि स्थिर रखने से खेचरी मुद्रा सिद्ध होती है । जो खेचरी मुद्रा जानता है, वह रोग, मृत्यु, निद्रा, भूख-प्यास व मूर्च्छना से

मुक्त रहता है । उसे रोग पीड़ा नहीं पहुँचा पाते, कर्म लिप्त नहीं कर पाते और कोई भी विवश नहीं कर पाता ।

यत्प्रालेयं प्रह्यियसुषिरं मेरुसूर्धान्तरस्थं ।
तस्मिन्तत्वं प्रवदति सुधीस्तन्मुखं निमग्नाम् ।।
चंद्रात्सार स्रवति वपुषस्तेन मृत्युर्नराणां ।
तद्बघ्नोयात्सुकरणमथो नान्यथा कार्यसिद्धिः ।।

मेरु पर्वत जैसी सुषुम्ना नाड़ी के ऊर्ध्व भाग में चन्द्रामृत स्थित है । उसी में आत्म–तत्व का निवास है । तालु के छिद्राकाश में जो गंगा–यमुना, सरस्वती, इड़ा–पिंगला, सुषुम्ना आदि नाड़ियों का मुख है, यहीं चन्द्रस्राव टपकता है । इसका खेचरी मुद्रा द्वारा जो पान करता है उसकी काया लावण्य युक्त वज्र जैसी बलवान हो जाती है । इस साधना के बिना कार्य सिद्ध कैसे हो ?

खेचरी योग तो योगी शिरश्चंद्रादुपागतम् ।
रसं दिव्यं पिषेन्नित्यं सर्वव्याधि विनाशनम् ।।

–योग रसायन

खेचरी साधना में योगी शिरश्चन्द्र से झरने वाले उस दिव्य रस को पीता है जो सब व्याधियों का नाश करने वाला है ।

चित्तं चलतिनो यस्माज्जिह्वा चरित खेचरी ।
तेनेयं खेचरी सिद्धा सर्वसिद्धै नमस्कृता ।।

–गोरक्ष संहिता १/६५

जिस योगी का चित्त चंचल नहीं होता और जिसकी जिह्वा खेचरी में रमण करती है, उनके लिए यह सभी सिद्धों द्वारा नमस्कार की हुई खेचरी मुद्रा सिद्ध हो जाती है ।

अपवित्रो पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा ।
खेचरी यस्यं सिद्धा तु स शुद्धो नात्र संशयः ।।

–शिव संहिता ४/५५

जिसे खेचरी मुद्रा सिद्ध है वह अपवित्र या पवित्र कैसी भी परिस्थिति में स्वयं शुद्ध प्रफुल्ल ही रहता है ।

पंचकोशों की यह अनावरण साधना भारतीय योग विज्ञान की अनन्यतम उपलब्धि है । प्रस्तुत पुस्तक में आत्मा पर चढ़े हुए पंचकोशों की स्थिति विज्ञान और महत्ता पर प्रकाश डाला गया है । साधना विधान का संक्षिप्त और सांकेतिक चित्रण भर है । वह अकारण नहीं । इन साधनाओं के कई विधान और अभ्यास ऐसे होते हैं, जो यदि व्यक्ति की शारीरिक और मानसिक परिस्थिति को ध्यान में रखे बिना बात दिये जायें तो वह लाभ के स्थान उल्टे हानिकारक सिद्ध हो सकते हैं । प्राचीन काल में साधनाओं के लिए आरण्यक हुआ करते थे । आज न तो ये आरण्यक रहे न इन साधनाओं के ज्ञाता गुरु–मार्गदर्शक, अतएव कहीं किसी से मात्र सुनकर या पढ़कर ही साधनाएँ सफल नहीं बनाई जा सकतीं । इसी कारण आभास स्पष्ट नहीं किये । ब्रह्मवर्चस्, हरिद्वार को एक ऐसे ही आरण्यक का रूप देने का प्रयास किया गया है । यहाँ इस तरह की साधनाओं के साथ मनुष्य जीवन सफल और सार्थक बनाने वाला शिक्षण भी सम्मिलित रखा गया है ।

यदि कोई इन जटिल साधनाओं में न जाकर भी पंचकोशों के अनावरण का लाभ प्राप्त करना चाहे तो फिर उसके लिए गायत्री उपासना का आश्रय ही सर्वश्रेष्ठ है । उससे प्रगति भले ही मंद हो पर लौकिक जीवन का आनन्दोपभोग करते हुए उपासक उसी स्थिति को प्राप्त करता है जो पंचकोशों के अनावरण की कठिन साधनाओं से उपलब्ध होनी संभव है ।

मुद्रक : युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा